सिद्धयोग

संरक्षक : [illegible] महाराज

वर्ष : 48, अंक : 3

जून 2015

श्री [illegible] प्रकाशन सर्वाई - 283202 (आगरा)

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

— चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

— अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे–तैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 48 जून 2015 अंक : 03

असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पाच्च सहासनात् ।
धर्मचाराः प्रहीयन्ते सिद्धयन्ति च न मानवाः ।।

(महा. वन. 1/29)

अर्थात् दुष्ट तथा दुर्व्यसनी मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कुसंगी मनुष्य कभी भी अपने किसी कार्य में सफल नहीं हो सकते ।।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सयांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 3
2. सम्पादकीय 11
3. सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य – साभार योग वाशिष्ठ जी 15
4. त्वमेव सर्वम्म मम देव देवा – श्रीमती शारदा सिसौदिया 18
5. योग – आसन 26
6. श्री मद् भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 28
7. शरीर को भगवान का मन्दिर मानकर इसे स्वस्थ रखे – दिनेश जी 31
8. स्वरूप महत्व 33
9. भजन – कव्वाली – मोती राम गर्ग 35
10. सत्याग : सात्विको – पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय 36

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

• विशेष लेख

स्थूल और सूक्ष्म के भुगतान

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने इससे पूर्व के लेख में कर्म–मीमांसा को समझा करके मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्म विपाक को स्थूल शरीर पर कैसे भुगतान करता है और वही भोग सूक्ष्म शरीर में किस प्रकार से भोगे जा सकते हैं और कारण शरीर में उनकी निवृत्ति का क्या उपाय है ये सब बातें पूर्ण विवरण के साथ उदाहरणों सहित समझा चुके हैं। किन्तु इनमें से कुछ अवशेष भाग समझाना और शेष है, जिसको समझ लेना भी साधक के लिए परमावश्यक है। कुछ अभ्यासी साधक इस प्रकार के होते हैं कि इनकी कारण शरीर में तो स्थिति हो ही नहीं पाती, प्रत्युत ये सूक्ष्म शरीर में भी पूरी तरह स्थिर नहीं हो पाते। ये अभ्यासी अच्छे होते हैं किन्तु ध्यानाभ्यास में दो–चार घण्टे बैठ लिये और फिर उठ गये। इनकी वृत्ति कभी अन्तर्मुखी होती है और कभी बहिर्मुखी। इन लोगों के प्रारब्ध भोग भी सूक्ष्म और स्थूल दोनों पर एक साथ आ जाया करते हैं। कुछ भाग स्थूल शरीर पर आ जाता है और उसी ही की कुछ निष्कृति सूक्ष्म में हो जाया करती है। पर इस प्रकार की स्थिति भी उन्हीं साधकों की हो पाती है जिनको सर्वसामर्थ्यवान पूर्ण गुरु मिल जाते हैं। साधक का अन्तर्मुख होना भी साधारण बात नहीं। साधक अपने प्रयत्न से तो साधना करता–करता बहुत ही लम्बे समय के बाद संयम नियम से चलने पर अन्तर्जगत में प्रवेश कर पाता है, किन्तु उत्तम प्रारब्धवश यदि किसी को कोई पूर्ण सद्गुरु मिल जाय और वे पूर्ण कृपा करके उस पर पूर्ण शक्ति संचार कर दें तो साधक अपने अन्तर्जगत में जल्दी ही प्रवेश पा जाया करता है और उसके प्रारब्ध कर्मों का भुगतान भी उसकी स्थिति के अनुसार स्थूल या सूक्ष्म दोनों में एक साथ निबट जाया करता है। हम यहाँ एक साथ निपटने वाले भोगों को उदाहरण सहित बतलाते हैं।

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द के शरीर पर घटित घटना

मेरे बड़े गुरुभाई योगिराज श्री गोपालानन्दजी को साधक समुदाय में कौन नहीं जानता। जिस समय भाई गोपालानन्दजी का स्मरण आता है उसी समय उनके जीवन का एक यथार्थ जैसा चित्रण आँखों के सामने घूमने लगता है। मैंने अपने जीवन में कई बातें उनसे पूछीं और कितनी ही घटनायें यथार्थता के साथ घटित होती हुई देखीं। श्री गुरुगीता में एक श्लोक आता है –

यस्य देवे पराभक्ति – र्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्य होतेऽर्था – प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात् जिसकी ईश्वर में बड़ी भारी भक्ति है और जैसी ईश्वर में है उस प्रकार की गुरु

में है तो उसको सकल अर्थ और विद्या स्वत: प्रकाशित हो जाया करते हैं। इसी उक्ति के अनुसार ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्दजी के जीवन में और उनके ध्यानाभ्यास में बिल्कुल सत्य-सत्य अनुभूतियाँ होती थीं। उन्होंने कई प्रकार की शिक्षायें अपने पूर्वज ऋषि-मुनियों से ध्यानाभ्यास में प्राप्त की थीं। वे सब शिक्षायें यथार्थ और सत्य थीं और कई एक साधकों को उन्होंने भूत और भविष्य की जो बातें बतलायीं, वे सभी पूर्णरूपेण यथार्थ निकली, उनकी वृत्ति कभी अन्तर्मुख रहती थी और कभी बहिर्मुख हो जाया करती थी। उनकी ऐसी स्थिति के समय की एक घटना का उल्लेख यहाँ हम करते हैं, इससे सभी साधक समुदाय भली प्रकार इस बात को समझ लेगा कि साधक के शरीर पर ध्यानाभ्यास के काल में कैसे-कैसे परिणाम होते रहते हैं।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने ऋषिकेष आश्रम में निवास कर रहे थे। ऋषिकेष योग-साधन आश्रम का रूपक इस समय कुछ और प्रकार है और उस समय का रूपक कुछ और प्रकार का था। सामने वाले दो-चार कमरे बने हुए थे। बाकी सामने की जमीन में बहुत सुन्दर बगीचा लगा हुआ था। उस बगीचे की सिंचाई साधक समुदाय ही किया करता था। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने भाई श्री गोपालानंदजी को आज्ञा दी कि 'बेटा तुम बगीचे की सिंचाई के लिए कुएँ से पानी खींचो।'

ब्रह्मचारीजी ने श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार बगीचे की सिंचाई करनी आरम्भ कर दी। जल कुएँ से खींचते-खींचते अकस्मात् एक घटना घटित हुई। ब्रह्मचारी गोपालानंदजी ने जल्दी-जल्दी जल के कनस्तर कुएँ से लाने आरम्भ कर दिए। अकस्मात् उनके हाथ से लोहे की भौनी जिस पर रस्सी लगी रहती है, वह छूट गई। उस भौनी में एक लम्बी कील लगी रहती थी। वह कील श्री गोपालानंदजी के हाथ को फाड़ती हुई चली गई। उनका हाथ अँगूठे की जगह से लेकर कोहनी तक काफी फट गया। सभी लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े योगी-ध्यानी का यह हाथ क्यों फट गया? सांसारिक आँखों से देखने वाले कई एक गृहस्थ परिवार वहाँ उपस्थित थे। उन लोगों ने कहा – हम सांसारिक लोग हैं, हम पर आपत्तियाँ आयें तो आयें, किन्तु यहाँ पर तो भीतर-बाहर की जानने वाले इतने बड़े योगियों पर भी आपत्ति आ रही है। इस प्रकार से तो हम संसार वाले ही अच्छे हैं। हम सांसारिक लोग दुनिया में रहते हुए बिजनेस-व्यापार करते हुए दु:ख-सुख भोगते रहते हैं और ये लोग खूब योग-ध्यान और समाधि परायण होते हुए भी दु:ख भोगते हैं तब इनमें और हमारे में क्या अन्तर है?

अन्त में यह प्रश्न श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के चरणारविन्द में निवेदन किया गया कि हे प्रभो! ऐसा हुआ तो क्यों हुआ? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया – अरे भई तुम लोग इन बातों को नहीं समझते हो, यह कोई कठोर भुगतान था जो मिट गया है और इसकी जिन्दगी बच गई, पर प्रभुजी के इस कथन से लोगों के मन को विश्वास नहीं हुआ। वे सभी एकांत में परस्पर कहने लगे कि यह तो कहने की बात है। ऐसा तो कहना ही पड़ता है और चारा भी क्या है बहकाने का

तरीका यह है ही। चलो ठीक है हमें क्या मतलब? जो हो रहा है ठीक हो रहा है। इसको तो वह परमात्मा ही जाने कि यह कठिन भोग था या आपत्ति थी। अन्तत: धीरे–धीरे ये चर्चायें श्री प्रभुजी तक पहुंचाई गई।

उन दिनों हमारे ध्यानाभ्यासी गुरु भाई–बहिन अच्छे और ऊँचे अभ्यासी होते थे वे लोग अपने ध्यानाभ्यास में जिस किसी भी बात की यथार्थता जानना चाहते, उसको यथार्थ रूप से जान लिया करते थे। उनको श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि तुम सब लोग हमें क्या कह रहे हो? यदि इसकी यथार्थता को जानना चाहते हो तो स्वयं ध्यान में बैठो और इसके पिछले संस्कारों को देखो और पता लगाओ कि इसके साथ यह घटना क्यों और कैसे घटित हुई?

आनंदकन्द श्रीप्रभुजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके अच्छे–अच्छे अभ्यासी सभी ध्यान में बैठ गये। उन लोगों ने ब्रह्मचारी गोपालानन्द के उस कठिन कर्म–विपाक का पता लगाया। उन लोगों ने ध्यान में देखा कि ब्रह्म. गोपालानन्द का पिछला जन्म गौघाट पर मथुरा में था। उनका उस जन्म का नाम श्री रामनारायन पाण्डेय था। ये गऊघाट पर रहते थे, इनकी आय का साधन कथावाचन आदि था। इनकी धर्मपत्नी बहुत ही सुन्दर, सती एवं पतिव्रता थी। वह देवी तो पतिपरायणा थी, किन्तु इनके मन में भ्रांतियाँ रहती थीं और अपनी पत्नी पर शंका करते थे कि कहीं यह इधर–उधर किसी और से प्रेम न रखती हो। इसलिए उसकी सुरक्षा के लिए बहुत ही सावधान रहते थे। यहाँ तक कि घर से दूर जाने वाले अपने कथाप्रवचन आदि को छोड़ दिया करते थे, एक दिन किसी बहुत ऊंचे करोड़पति घराने के परिवार में इनको कथा–प्रवचन के लिए आमन्त्रण मिला। वे लोग श्री सत्यनारायण जी की कथा उनसे कहलवाना चाहते थे।

श्री रामनारायन पाण्डेयजी के सामने यह बहुत बड़ी विषम समस्या आ खड़ी हुई। यदि धनिक महोदय का निमंत्रण छोड़ देते हैं तो प्रचुर आय हाथ से जाती है। वे निश्चय ही किसी और पण्डित को बुला लेते और वह पण्डित सदा के लिए अपना प्रभाव वह कायम कर लेता उधर तो यह समस्या और इधर धर्मपत्नि को यदि अकेली छोड़कर जाते हैं तो मानस भ्रांतियाँ दु:खी करेंगी कि यह किसी और के पास चली जावे। यह जटिल समस्या सामने आने पर श्री रामनारायन पाण्डेय जी ने फिर विचार किया कि मैं अपनी धर्मपत्नी को घर के इतने काम बतला दूँ कि वह मेरे लौटने तक पूरे–पूरे काम कर ही न पाये। ऐसा करने से इसको इधर–उधर जाने का समय नहीं मिल पायेगा और बरबस घर में इसे रुका रहना पड़ेगा। उन्होंने ऐसा ही किया। वे अपनी पत्नी को काफी मात्रा में काम बतला करके उन धनिक महोदय के यहाँ कथा–प्रवचन आदि करने के लिए चले गये। वहाँ जा करके भी इन्होंने यज्ञादि के कर्मकाण्ड के कार्यों को जल्दी–जल्दी करके वहाँ से जल्दी लौटने की चेष्टा की।

सेठजी ने कहा – पण्डितजी, क्या बात है आप तो बहुत ही जल्दी कर रहे हो? पंडित जी ने सेठजी को खुश करने के लिए कहा – नहीं–नहीं सेठजी ऐसी कोई बात नहीं है, यह तो मेरे यजमान का घर है, यहाँ से मैं जल्दी क्यों जाऊंगा? इतना कहने के बाद भी पंडित जी को जल्दी

थी। वे जल्दी–जल्दी वहाँ के काम को निबटा करके अपने घर आये तो अपनी पत्नी को घर के कामों में संलग्न देखा। उनकी धर्मपत्नी अपने घर के कुँए के पास बैठकर बर्तन आदि मांजने का काम कर रही थी। उसके पतिदेव रामनारायन पाण्डेय ने पूछा – क्या तुमने घर के सभी कामकाज कर लिये। उसने कहा – हाँ पतिदेव! जिन–जिन कामों की आप आज्ञा दे गये थे, मैंने वे सभी काम कर लिये हैं। गऊ को पानी आदि भी पिला दिया है, किन्तु मैं अभी तक गऊ के लिए कुट्टी नहीं काट पाई। इतना कहने पर श्री रामनारायन पाण्डेय को क्रोध आ गया और उन्होंने अपनी पत्नी को डाटते हुए कहा कि 'तूने अभी तक गऊ के लिए कुट्टी नहीं काट पाई? क्यों नहीं, मैं तेरी ही कुट्टी काट दूँ।' उस समय उसकी पत्नी कुँए की दीवार पर अपना हाथ रखकर बैठी थी। रामनारायन पाण्डेय ने अपनी पत्नी के हाथ पर जोर से गड़ासा मार दिया और वह हाथ कटकर कुँए में गिर गया। उसके फलस्वरूप उसकी पत्नी भी तड़प–तड़प कर थोड़ी देर बाद मर गई।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने ध्यान में बतलाया कि उसी कठोरतम कर्म के कारण इसका हाथ भी इसी प्रकार से कटना था और यह उससे भी बुरी तरह से तड़प कर मरता, किन्तु यह विवेक–ख्याति की ओर है। इसलिए उसका भुगतान सूक्ष्म होकर स्थूल में भुगत गया है। सभी अच्छे ध्यानियों ने ध्यान से उठकर यही घटना बतलाई। इतने पर भी लोगों के लिए शंका बनी रही कि पता नहीं, यह घटना सच भी है या नहीं, या केवलमात्र स्वप्न है। इतने पर श्रीप्रभुजी ने आज्ञा दी कि यदि अब भी तुम्हारे मन में शंका है तो तुम मथुरा चले जाओ और वहाँ जाकर मुहल्ला गऊघाट पूछ करके रामनारायन पाण्डेय का पता लगाओ और यह भी पता लगाना कि उसी स्त्री की मृत्यु कैसे हुई? अब हमारे गुरु–भाई लोगों ने जा करके घटना का पता लगाया तो वह घटना बिल्कुल यथार्थ निकली।

यह था सूक्ष्म और स्थूल पर इकट्ठा भुगतान। जो अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों स्थितियों में रहने वाले साधकों पर घटित हुआ करता है।

एक और घटना

रोहतक शहर के पास हरियाने में एक पहरावर गाँव है, जो रोहतक शहर से केवल 5 या 10 मील की दूरी पर है। वहाँ पर उस गाँव में एक बार हमारा योग–प्रचार कार्यक्रम चला। वहाँ कितने ही साधकों ने योग–दीक्षायें लीं और वे लोग ध्यानाभ्यास करने लगे। उस समय के प्रचार–क्षेत्रों में बहुत अधिक भीड़भाड़ नहीं हुआ करती थी। अतः साधकों को अभ्यास करने का समय अच्छा मिल जाया करता था। वहाँ पर एक साधक की ध्यान–स्थिति बहुत ही ऊँची बढ़ी, उसका नाम ध्वजाराम है। उसने अपने ध्यानाभ्यास में देखा कि एक कालासर्प है और वह उसकी ओर मुँह फैलाये बैठा है। साथ ही ध्यान में श्री प्रभुजी दिखलाई पड़े। श्री प्रभुजी ने उस साधक से कहा कि होनहार बलवान है। यह काला सर्प ही तुम्हारा काल है। आज से दो दिन बाद यह तुम्हें काट खायेगा और इसके काटने पर तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। किन्तु तुम विवेक–ख्याति

की ओर हो, इसलिए मौत से तुम्हारी रक्षा कर ली जायगी। किन्तु भुगतान अवश्य भुगतेगा। इसलिए दो रोज तुम बराबर ध्यान में ही बैठे रहो। ताकि उस घोर आघात से बच सको।

ध्वजाराम ने श्री प्रभुजी से पूछा कि हे प्रभो! यह सर्प मुझे किस रोज काटेगा? तो श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया यह तुम्हें परसों काट खायेगा, हटाया नहीं जा सकता। संस्कार प्रबल है। ध्वजाराम ने ध्यान में यह सब कुछ देखकर अपनी सुरक्षा के लिए महाराजा परीक्षत की तरह से पूरा-पूरा प्रबन्ध किया। ध्वजाराम ने सर्प काटने वाले दिन अपने कमरे में एक मेज लगा ली उसके ऊपर वह बैठ गया। कमरा काफी लम्बा-चौड़ा था। मेज से दो-दो, तीन-तीन फुट पर जलती आग के कंडे रख दिए। कमरे के सुराख वगैरह बन्द कर दिए। फिर भी उसने विचार किया कि मैं खूब ऊँची मेज पर बैठा ही हूँ। पहले तो कमरे में सर्प आयेगा ही नहीं, आ गया तो यह आग में जल जायेगा और यदि आग से भी बच गया तो ऊँची मेज पर कैसे चढ़ेगा? आदि-आदि ऊँचे-ऊँचे संविधान उसने बना लिये। परन्तु होनहार अपना काम कर ही लेती है। ध्वजाराम के इस प्रकार बैठ जाने के बाद उसके गाँव के कुछ लोग उसके पास इकट्ठे हो करके आये। उन्होंने आकर कहा कि भाई ध्वजाराम! यह तू क्या कर रहा है? क्या कोई अनुष्ठान कर रहा है या कोई यन्त्र-मंत्रादि सिद्ध कर रहा है? ध्वजाराम ने जो कुछ भी ध्यान में देखा था, गाँव वाले अपने साथियों के सामने ज्यों का त्यों बतला दिया। श्री प्रभुजी ने जो आदेश दिया था वह सब कहकर समझा दिया। किन्तु गाँव वाले उसके पास खास काम से आये थे। उन्होंने खेतों में कुछ निशान लगवाने थे, नालो आदि निकालनी थी।

ध्वजाराम पढ़ा-लिखा लड़का था, इसलिए गाँव वालों ने आग्रह किया कि भई तू यहाँ से उठ और गठ्ठा जरीब लेकर हमारे साथ चल और खेतों में निशान लगा। ताकि हम नाली निकाल लें और खेतों में पानी लगाकर अपने धान आदि लगा लें। इस प्रकार के स्वप्नों में आने वाले सांप कहीं किसी को खाया नहीं करते। तू गठ्ठा जरीब लेकर हमारे साथ चल, हम बीस आदमी तेरे साथ चलेंगे। कदाचित कोई सर्प आ भी गया तो उसको हम तेरे पास तक नहीं आने देंगे। तेरे पास आने से पहले ही हम उसे मार देंगे। ध्वजाराम को बाध्य करके वे लोग अपने साथ ले गये और खेतों में जा करके जरीब गठ्ठे से नाम-तौल करके ध्वजराम ने खेतों में निशान आदि लगाने आरम्भ कर दिये। ध्वजाराम ने कस्सी उठा करके एक मेड़ को काटने के लिए कस्सी अर्थात् फावड़ा चलाया वहीं काला सर्प जो दो दिन पहले उसने ध्यान में देखा था बड़ी तेजी से निकल आया और उस सर्प ने ध्वजाराम के दाहिने पैर की उंगली में काट खाया। सर्प के काटते ही ध्वजाराम को तत्काल मूर्च्छा आ गई और सारे शरीर में विष छा गया। सभी गांव वालों ने अपनी आँखों इस घटना को देखा और कहने लगे कि अरे भाई हमने बड़ी भारी भूल की। हम तो इसके योग-ध्यान को स्वप्न ही समझते थे, किन्तु यह बात तो बिल्कुल सच्ची निकली। अच्छा अब इसे उठाओ और गाँव में ले चलो। इसका कोई इलाज वगैरह कराओ ताकि बेचारे के प्राण तो किसी तरह से बच जायें।

उधर ध्वजाराम की उस बेहोशी में श्री प्रभुजी तत्काल उसके सामने आ गये और अपने हाथों से एक जड़ी उखाड़ कर उसको खिलादी, पानी में घोंट कर भी पिला दी और कह दिया कि अब तुम कोई और उपचार न करना। कल तक तुम्हारे शरीर का यह सारा विष अपने आप दब आयेगा। कोई और उपचार किया तो बहुत विलम्ब हो सकता है। किन्तु ध्वजाराम बिल्कुल बेहोश था। उसके साथी लोग उसको यथा–तथा उठाकर गाँव में ले आये। उन लोगों ने अपने मनमाने उपचार करने आरम्भ कर दिये। परिणाम यह निकला कि ध्वजाराम के शरीर का वह विष उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। शरीर सब नीला पड़ गया। लाचार होकर घर वालों ने उसको अन्तिम समय की प्रतीक्षा में जमीन पर रख दिया। ध्वजाराम की ऐसी हालत को देख करके उसकी माता भी दहाड़ दे–देकर रोने लगी। एवम् श्री प्रभुजी के चित्र के सामने प्रार्थना करते–करते गिर पड़ी। बेहोशी में उसकी माताजी ने देखा कि श्री प्रभुजी ध्वजाराम को फिर वही जड़ी पिला रहे हैं और उसकी माता से कह रहे हैं कि देवी अब कोई और उपचार नहीं करना, ध्वजाराम दो घण्टे बाद बोल उठेगा और धीरे–धीरे इसके शरीर का सारा विष अपने आप उतर जायेगा। बेहोशी के बाद जब ध्वजाराम की माँ की आँखें खुली तो उसने सभी से कह दिया कि मेरे बेटे को कोई भी दवाई मत पिलाओ। श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की कृपा से अगर यह बचा तो बच जायेगा, अन्यथा जा तो रहा ही है। ध्वजाराम की माता के हठात् बार–बार कहने से गाँव के लोगों ने ध्वजाराम के अन्य उपचार छोड़ दिये। उसके बाद श्री आनन्दकन्द प्रभुजी के कथानुसार ध्वजाराम स्वयं ही बोल उठा और कह दिया कि कोई चिन्ता मत करो अब मैं बच गया हूँ। श्री प्रभुजी मेरे पास बैठे हैं और वही मुझे बचा रहे हैं।

इस प्रकार ध्वजाराम के शरीर का सारा विष उतर गया और दो–तीन दिन के बाद वह घर के सभी काम संभालने लग गया। यह घटना लगभग तीस या पैंतीस वर्ष पहले की हो चुकी है। ध्वजाराम अभी तक पूर्ण–रूपेण स्वस्थ है और अपने कामों में संलग्न है। यह घटना भी स्थूल और सूक्ष्म के मिले–जुले भुगतान की परिचायक है। इस प्रकार जो लोग योग ध्यान परायण बने रहते हैं वे अपने घोरतम संकटों को निबटा कर खत्म कर देते हैं और अपने जीवन को सुखी बना लेते हैं।

वीतराग पुरुषों के ध्यान का परिणाम

शास्त्रीय परिभाषा में समाधि का अर्थ है –

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि।।

– योगदर्शन

अर्थात् जिसके चिन्तन करने में जिसका हम ध्यान कर रहे हैं वही–वही भासित होता रहे, साधक को अपने स्वरूप का भी ज्ञान न रहे, यदि ज्ञान रहे तो केवल मात्र एक ही कि ध्याता अपने आपको ध्येयाकार में परिवर्तित देखता रहे और अपने स्वरूप का आभास तक न रहे, इसी का नाम समाधि है। वीतराग पुरुषों का ध्यान करने वाले साधक जब अपने आप को उनके

स्वरूप में लय कर डालते है तो उनकी अपनी स्वरूप सत्ता भी नहीं रहती। ऐसा साधक समाधि अवस्था में देखता है कि –

शिवोऽहम् शिवोऽहम् शिवकेवलोऽहम्।।

अर्थात् मैं स्वयं ही शिव हूँ, केवल मैं शिव ही हूँ, मुझ से अलग और कुछ भी नहीं है। ऐसा साधक तद्‌रूपता को प्राप्त करके अपने आपको व्यापक सत्ता में विलीन देखने लगता है। वह देखने लगता है –

सर्वभूतस्थानात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि, ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन.।

अर्थात् प्राणिमात्र के अन्दर अपने आपको और प्राणिमात्र को अपने अन्दर केवलमात्र योगयुक्त योगी ही देखता है, अन्य कोई भी देख नहीं पाता। ऐसी स्थिति में साधक अपने आपको उस व्यापक सत्ता में बिलकुल विलीन देखता है। ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाने के बाद साधक का कोई भी कर्म अवशेष नहीं रहता। हृदय–ग्रन्थि का भेदन होकर सभी प्रकार का कर्म–बंधन क्षय हो जाता है। सब संशय नाश हो जाते हैं, उसके लिए कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। इसी प्रकार की एक और घटना एक साधक की हम यहाँ पर बतलाते हैं –

यह साधक मलावन गाँव जिला एटा का है। उसकी अपनी योग–स्थिति ठीक इसी प्रकार की थी, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। साधकों के अनिष्ट को दूर करने वाले केवलमात्र सद्‌गुरुदेव ही हैं। वे अन्तरात्मा में अवस्थित हो करके उत्तरोत्तर भूमिकाओं को प्रगट करते रहा करते हैं। मलावन गाँव का यह साधक वीतराग पुरुष भगवान् विष्णु के स्वरूप में अपने आपको हर समय लय देखने लगा। एक बार इसको ध्यानावस्था में श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि तुम तीन दिन के अन्दर भोग में आने वाले अपने कर्म–विपाक को देखो। श्री प्रभुजी की आज्ञा को पाकर जब उसने तीन दिन के समय के अन्दर भोग में आने वाले कर्म–विपाक को देखा तो एक सर्प के काटने के संस्कार को देखा और यह भी उसने पता लगा लिया कि इस सर्प के काटने का भोग काल दोपहर के समय 11 बजकर 5 मिनट पर है। उसने ध्यानावस्था में ही श्री प्रभुजी से पूछा कि हे प्रभो! क्या मैं किसी प्रकार इस क्लिष्ट संस्कार से बच सकता हूँ अथवा नहीं बच सकता। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि यह बात तुम्हारी लयता पर आधारित है। तुम ग्यारह बजे से कुछ समय पहले ही समाधि में बैठ जाना। यदि तुम्हारी समाधि प्रगाढ़ हो गई और लयता पा गये तो तुम्हें सर्पदंशक नहीं होगा अन्यथा अवश्य होकर ही रहेगा।

यह बच्चा श्री आनन्दकन्द प्रभुजी की अपार कृपा से कई–कई घण्टे तक लगातार समाधिस्थ रहता था। उस दिन भी उसने यह सर्पदंश वाली सब बातें अपने छोटे भाई को बतला दीं और उस छोटे भाई से कह दिया कि तुम यहां बैठकर देखते रहना कि क्या कोई सर्प इस कमरे में से कहीं से निकल कर मेरे पास आता है या नहीं। यह कह करके वह साधक बच्चा समाधि में बैठ गया और अपने छोटे भाई को सर्प को देखने के लिए उस कमरे में बैठा दिया।

समाधि में बैठे हुए उसके भाई को जब ग्यारह बजकर पांच मिनट हो गए तो उसके भाई ने देखा कि उस कमरे की कोने वाली दीवार के एक सूक्ष्म छिद्र से एक काला सर्प निकला। वह तेजी से इधर–उधर चलता हुआ ठीक ग्यारह बजकर पांच मिनट के समय पर उसके समाधि में बैठे हुए भाई के शरीर पर चढ़ गया। लगभग पांच या सात मिनट तक उसके शरीर पर ही घूमता रहा और फुंकार मारता रहा किन्तु काटा नहीं। इस प्रकार लगभग सवा ग्यारह बजे तक वह सर्प इधर–उधर घूम करके अपने उसी बिवर में घुस गया।

इस घटना के घट जाने के लगभग एक घण्टे के बाद उस साधक बच्चे की समाधि खुल गई। समाधि खुलने के बाद उसने अपने छोटे भाई से पूछा कि क्या यहाँ कोई सर्प आया था? छोटे भाई ने अपने बड़े भाई से हाथ जोड़कर कहा कि भाई सर्प क्या आया था, वह तो बिल्कुल तुम्हारा काल ही आया था। जो थोड़ी देर तक तुम्हारे शरीर पर घूम करके इस दीवार के साथ वाले विवर में प्रवेश कर गया है। इस सब घटना को जान करके उस ध्यानी साधक ने ध्यान में श्री प्रभुजी से पूछा कि हे प्रभो! मैं इस सर्प के कठोर दंश से किस प्रकार बच गया। कृपा कर यह बात मुझे समझा दीजिए।

श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि बेटा! उस समय तुम भगवान विष्णु के स्वरूप में लय थे। सर्प ने तुम्हें काटना था न कि भगवान विष्णु को। अब तुम्हारा यह संस्कार कट गया है, अब जिन्दगी भर तुम आराम से रहोगे। अब तुम्हारे पास सर्प बिल्कुल नहीं आयेगा।

यहाँ पर वही शास्त्रीय सिद्धान्त लागू है जिसमें कहा गया है कि –

भिद्यते हृदय ग्रन्थि, छिद्यन्ते सर्व संशयाः।

क्षीयन्ते सर्व कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे।

अर्थात् उस नजदीक से नजदीक और दूर से दूर व्यापक रहने वाली सत्ता में विलीन रहने वाले योगियों के क्लिष्टाक्लिष्ट संस्कार स्वतः ही खत्म हो जाते हैं और उनकी हृदय ग्रन्थि स्वतः ही खुल जाती है और उनके ऊपर कोई भी कर्म अवशेष नहीं रहता है? यह कर्म–बन्धन क्षय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इन लेखों को पढ़कर साधक लोगों को चाहिए कि वे अपने आपको अन्तर्जगत में प्रवेश करायें और परम–कल्याण समाधि पद को प्राप्त करके अपने को कृतकृत्य बना डालें।

श्री मद्वाल्मीकीय रामायण और योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

श्री रामचन्द्र जी और सीता जब वनवास की तैय्यारी में जुटे हुये थे तथा ब्राह्मणों को, सेवकों को दान दिये जा रहे थे उसी समय लक्ष्मण वहाँ आ गये। लक्ष्मण जी ने श्री राम जी के दोनो पैर जोर से पकड़ कर कहा – आर्य! आपने सहस्रों वन्य पशुओं व हाथियों से भरे हुये वन में जाने का पूर्ण निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी आपका अनुसरण करूँगा, और धनुष हाथ में लेकर आप के आगे – आगे चलूँगा –

न देव लोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे

ऐश्वर्य चापि लोकानां कामये त्वया विना।

मैं आपके बिना स्वर्ग जाने, अमर होने तथा सम्पूर्ण लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त करने में भी इच्छा नहीं रखता। जब रामचन्द्र जी मना करने लगे तो लक्ष्मण बोले– भ्राता जी! आपने तो मुझे पहले ही साथ चलने की आज्ञा दे रखी है फिर आप इस समय मुझे क्यों रोक रहे हैं ? आप मुझे साथ ले जाने में क्यों संकोच कर रहे हैं? इस पर श्री राम जी ने लक्ष्मण से कहा, " लक्ष्मण ! तुम मेरे परम स्नेही धर्म परायण, धीर–वीर तथा सन्मार्ग के मार्ग में स्थित रहने वाले हो, मुझे प्राण के समान प्रिय हो, तथा मेरे वश में रहने वाले आज्ञा पालक और सखा हो।

सुमित्रानन्दन ! यदि आज तुम भी हमारे साथ वन में चलोगे तो परम यशस्विनी माता कौशल्या और सुमित्रा की सेवा कौन करेगा ? मेघ जैसे पृथ्वी पर जल बरसाता है, उसी प्रकार जो सबकी कामनायें पूर्ण करते थे वे महातेजस्वी राजा दशरथ कैकयी के प्रेम– पाश में बँध गये है। भरत राज्य सिंहासन पाकर कैकयी के आधीन रहने के कारण दुखिया कौशल्या और सुमित्रा का ठीक प्रकार से भरण–पोषण नहीं करेंगे। अतः तुम यहाँ रहकर माता कौशल्या व सुमित्रा आदि माताओं की सेवा करो तथा उनका पालन करो। ऐसा करने से मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति प्रकट हो जायेगी तथा गुरु जनों की पूजा–सेवा से जो महान धर्म होता है वह भी प्राप्त हो जायेगा। इसलिये सुमित्रानन्दन ! तुम रघुकुल को आनन्दित करने वाले हो, तुम मेरी बात मान लो अन्यथा हम लोगों से बिछुड़ी हुई माँ को कभी सुख नहीं होगा और वे सदा हमारी चिन्ता में डूबी रहेंगी। श्री राम के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण ने धैर्य पूर्वक कहा – वीर श्रेष्ठ ! आप के तेज के प्रताप से भरत माता कौशल्या और सुमित्रा दोनों का ही पवित्र भाव से सेवा–पूजा करेंगे इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यदि भरत राज्य पाकर बुरे मार्ग पर चलेंगे, माताओं की रक्षा नहीं

करेंगे तो मैं उन दुर्बुद्धि और क्रूर भरत को तथा उनके समर्थन करने वालों का वध कर डालूँगा। इसमें संशय नहीं है। वैसे भी माता कौशल्या स्वयं ही मेरे जैसे हजारों मनुष्यों का पालन कर सकती है क्योंकि उन्हें आश्रितों का पालन करने के लिये एक सहस्त्र गाँव मिले हुये हैं। इसलिये वे मनस्विनी माता कौशल्या स्वयं ही अपना तथा माता सुमित्रा का व अन्य बहुत से लोगों का भरण–पोषण करने में समर्थ हैं। अतः आप मुझे अपना अनुगामी बना लीजिये, इसमें कोई धर्म की हानि नहीं होगी। मैं कृतार्थ हो जाऊँगा तथा आपका भी प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। मैं प्रत्यंचा युक्त धनुष लेकर तथा खंती और पिटारी लेकर आप का रास्ता साफ करता हुआ आप के आगे–आगे चलूँगा। मैं प्रतिदिन आपके लिये कन्द–मूल लाता रहूँगा और तपस्वी जनों के लिए उपलब्ध अन्यान्य सामग्री जुटाता रहुँगा। वहाँ वन में मैं आपके जागते हुये, सोते हुये हर समय सभी कार्य पूरा करता रहूँगा। लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर प्रसन्न हुये श्री राम बोले, " जाओ सुमित्रानन्दन! अपनी माता तथा सुहृद जनों से मिलकर अपनी वन यात्रा के विषय में पूछ लो तथा उनकी अनुमति माँग लो ! लक्ष्मण ! महाराज जनक के महान यज्ञ के समय महात्मा वरुण ने, देखने में जो अत्यन्त भयंकर जो दिव्य दो धनुष दिये थे तथा दो दिव्य अभेद्य कवच दिये थे और सूर्य की भाँति चमकने वाले दो खड्ग दिये थे जो सुवर्ण भूषित थे उन सब अस्त्रों को जनक जी ने हमे दहेज मे दे दिया था। वे सब गुरुदेव के ग्रह में सत्कारपूर्वक रखे हुये हैं उन आयुधों को लेकर शीघ्र लौट आओ। आज्ञा पाकर लक्ष्मण गुरुदेव के घर गये और उन दिव्यास्त्रों को ले आये। उन्हें लक्ष्मण जी ने श्री राम जी को सौंप दिया। श्री राम जी ने उन्हें देखकर प्रसन्न होते हुये कहा – सौम्य लक्ष्मण ! तुम ठीक समय पर आ गये। इसी समय तुम्हारा आना मुझे अभीष्ट था – शत्रुओं को संताप देने वाले वीर ! मेरा यह जो धन है उसे मैं तुम्हारे साथ रहकर तपस्वी ब्राह्मणों व वेदपाठी ब्रह्मचारियों में बाँटना चाहता हूँ। श्री गुरुदेव वशिष्ट जी के पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ सुयज्ञ को तुम यहाँ बुला लाओ उन्हें मैं उचित धनादि से सत्कार करके वन को जाना चाहता हूँ। लक्ष्मण ने गुरु पुत्र सुयज्ञ के घर में प्रवेश किया। उस समय विप्रवर सुयज्ञ यज्ञशाला में बैठे हुये थे। लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया और कहा – सखे ! श्रीराम जी के घर पर आओ ! उनका कार्य देखो । मध्यान्हकाल की सन्ध्या पूरी करके सुयज्ञ लक्ष्मण जी के साथ श्री राम जी के पास आ गये। श्री राम जी का भवन जो लक्ष्मी से पूर्णतया सम्पन्न था, उसमें प्रवेश किया –गुरुपुत्र सुयश को अपने महल में आया देखकर श्री राम जी ने जानकी सहित अगवानी की। तत्पश्चात श्री राम ने सोने के बने अङ्गदों, कुण्डलों, सुवर्णमय सूत्र में पिरोई हुई मणियों, केयूरों तथा अन्य बहुत से रत्नों द्वारा पूजन किया। श्री राम ने पुनः कहा – तुम्हारी पत्नी की सखी सीता तुम्हें अपना घर सुवर्ण सूत्र और करधनी देना चहती हैं। उत्तम बिछौना से युक्त नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित जो पलंग है उसे भी विदेह नन्दिनी सीता तुम्हारे ही घर में भेज देना चाहती है। विप्रश्रेष्ठ मेरे मामा ने मुझे जो शत्रुञ्जय नामक हाथी भेंट किया था उसे भी एक हजार अशर्फियों के साथ अर्पित करता हूँ। श्री राम जी के ऐसा करने पर सुयज्ञ ने सब वस्तुयें ग्रहण करके श्री राम सीता तथा लक्ष्मण के लिये मंगलमय आशीर्वाद प्रदान किये। तत्पश्चात श्री

राम लक्ष्मण से बोले – सुमित्रानन्दन ! अगस्त्य और विश्वामित्र दोनों उत्तम ब्राह्मणों को बुलाकर रत्नों द्वारा उनकी पूजा करो तथा उन्हें सहस्त्रगौओं, सुवर्ण मुद्राओं तथा रजत द्रव्यों और बहुमूल्य मणियों द्वारा सन्तुष्ट करो। विभिन्न शाखा के वेदाध्यायी यज्ञकर्ता ब्राह्मणों को उत्तम सवारी, रेशमी वस्त्र और जितने धन से ब्राह्मण देवता सन्तुष्ट हो जायें उतना धन राजकोष से दिलवाये जायें। और भी बहुत से ब्रह्मचारी वेदाध्ययन परायण रहते हैं व स्वाध्याय रत रहते हैं उन्हें भी रत्नों के बोझ से लदे हुये अस्सी ऊँट, एक सहस्त्रबैल, मूग चना आदि खाद्य पदार्थ लदवाकर दो सौ बैल और दिलवाओ। इस प्रकार से ब्रह्मचारियों,वेद पाठियों को मेरे द्वारा दिलाई हुई दक्षिणा देखकर मेरी माता कौशल्या आनन्द से भर जाये उसी प्रकार से उन सब की पूजा करो ! श्री राम जी की आज्ञापाकर पुरुष सिंह लक्ष्मण ने खुले दिल से ब्राह्मण, वेदज्ञों को धनादि बांटे। इसके पश्चात श्री राम जी ने अपने आश्रित सेवकों, जिनका उनके विरह दुःख से गलारुँध गया था, प्रत्येक को चौदह वर्ष तक जीविका चलने योग्य द्रव्य प्रदान किये और उनसे कहा – जब तक मैं वन से लौटकर न आऊँ तब तक तुम मेरे तथा लक्ष्मण के इस घर को कभी सूना छोड़कर, अन्यत्र नहीं जाना। नगर में एक त्रिजट नाम के गरीब ब्राह्मण रहते थे जो कन्द–मूल लाकर अपने परिवार व बच्चों का पालन करते थे तथा वृद्ध हो गये थे। उनकी तरुणी पत्नी ने कहा – आप श्री राम जी के पास चले जायें तो वे आपको अवश्य कुछ न कुछ प्रदान करेंगे। वह त्रिजट ब्राह्मण बेरोक टोक श्री राम जी के महल में पहुँच गये और श्री राम जी से कहा– महाबली राजकुमार ! मैं निर्धन हूँ मेरे बहुत से छोटे – पुत्र हैं। जीविका नष्ट होने से सदा वन में रहता हूँ, आप मुझ पर कृपा कीजिये। श्री राम जी ने विनोद पूर्वक कहा – " ब्रह्मन ! मेरे पास असंख्य गौये हैं जिन्हें मैने किसी को दिया नहीं है। आप अपना डण्डा जितना दूर फेंक देंगे, वहाँ तक की सारी गौवें मैं आप को दे दूँगा "। ब्राह्मण ने जोर से डण्डा फैंका जो हजारों गौओं के झुण्ड के बीच में गिरा। श्री राम ने गिरे हुये डंडे के स्थान तक जितनी गौवें थी उन्हें ब्राह्मण के घर भिजवा दिया। ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर यश बल और कीर्ति वृद्धि का आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात सीता, राम और लक्ष्मण वन जाने की पूर्ण तैय्यारी करके अपने पिता महाराज दशरथ के महल की ओर जाने लगे। धनुष, कवच और आयुध आदि साथ में थे। नगर के लोग अत्यधिक भीड़ के कारण अपने मकान के छतों के ऊपर चढ़ गये और उदास नेत्रों से देखने लगे। लोग कहने लगे–हाय ! यात्रा के समय जिनके पीछे चतुरांगिणी सेना चलती थी वे राम आज अकेले ही लक्ष्मण के साथ जा रहे हैं। अपने पिता के वचनों को सत्य करने के लिये कटिबद्ध हैं और यह सीता –

या न पुरा शक्या द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ।।

ओह ! पहले आकाश के पक्षी भी जिन्हें नहीं देख पाते थे उसी सीता को इस समय सड़कों पर सब लोग देख रहे हैं। निश्चित ही राजा दशरथ पर किसी पिशाच का आवेश हो गया

है इसलिये वे अनुचित बात कर रहे हैं क्योंकि स्वाभाविक स्थिति में रहने वाला कोई भी राजा अपने पुत्र को घर से नहीं निकाल सकता पढ़िये निम्न श्लोक –

अद्य नून दशरथः सत्त्वाविश्य भाषते।
नहि राजा प्रियं पुत्रं विवासयितुमर्हति ।।

राम के चरित्र से ही संसार वशीभूत हो रहा है उनको वनवास देने की बात कैसे की जा सकती है। क्रूरता का अभाव, दया, विद्या शील, दम और शम ये छः गुण श्री राम में सदा ही रहते हैं। सारे नगर के लोग वनवास के समाचार से व्यथित हैं और सभी लोग श्री राम जी के साथ वन को जाने को तैय्यार हो रहे है। श्री रामचन्द्र जी लोगों के मुख से तरह–तरह की बातें सुन रहे थे किन्तु सुनकर भी मन मे कोई विकार नहीं हुआ। श्री राम कैकेयी के महल की ओर जाने लगे जहाँ शोकाकुल पिता दशरथ शोक में डूबे हुये हैं। श्री राम ने सुमन्त्र से अपने आगमन की सूचना राजा दशरथ को देने को कहा ।सुमन्त्र दशरथ जी के पास पहुँचे तो देखा कि वे अत्यन्त शोक में लम्बी–लम्बी साँस खींच रहे हैं।

(क्रमशः)

● ● ●

सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य एवं जीवन्मुक्त महात्माओं के उत्तम गुणों का उपदेश

(साभार योग वासिष्ठ से)

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं – रघुनन्दन ! रमणीय स्त्री आदि तथा धन के नष्ट होने पर शोक का कौन – सा अवसर है ! इन्द्रजाल की वृष्टि से देखे गये पदार्थ के नष्ट होने पर क्या कोई विलाप करता है ? अविद्या के अंशभूत पुत्र आदि के प्राप्त होने पर सुख और नष्ट होने पर दुःख का प्रसार होना क्या कभी उचित है ? रमणीय धन और स्त्री आदि की प्राप्ति एवं वृद्धि होने पर हर्ष से फूल उठने का क्या अवसर है ? क्या मृगतृष्णा के जल की वृद्धि होने पर जलार्थी पुरुषों को आनन्द प्राप्त होता है ? कदापि नहीं। धन और स्त्री आदि के बढ़ने पर तो उन्हें परमार्थ मे बाधक समझकर दुःख का अनुभव करना चाहिये, संतोष मानना तो कदापि उचित नहीं। संसार में मोहमाया की वृद्धि होने पर भला, कौन सुखी एवं स्वस्थ रह सकता है। जिन भोगों के बढ़ जाने पर मूढ़ मनुष्य को राग होता है, उन्हीं की वृद्धि से विवेकशील पुरुष के मन में वैराग्य होता है। नश्वर धन और स्त्री आदि के सुलभ होने में हर्ष का क्या कारण है ? जो इनके परिणाम को देख पाते हैं, उन साधु पुरुषों को तो इनसे वैराग्य ही होता है। अतः रघुनन्दन ! संसार के व्यवहारों में जो–जो वस्तु नश्वर प्रतीत हो, उसकी तो तुम उपेक्षा करो और जो न्यायतः प्राप्त हो जाय, उसे यथा योग्य व्यवहार में लाओ; क्योंकि तुम तत्त्वज्ञ हो। अप्राप्त भोगों की स्वभावतः कभी इच्छा न होना और दैवात् प्राप्त हुए भोगों को यथायोग्य व्यवहार में लाना– यह ज्ञानवान् का लक्षण है।

जिस किसी भी युक्ति अथवा साधन से जिस पुरुष का जड़ दृश्य से राग चला जाता है, उसकी परमात्मा में दृढ़ विश्वास रखने वाली विमल बुद्धि कभी मोहरूपी सागर में नहीं डूबती। यह असत् है, ऐसा समझकर जिसकी समस्त सांसारिक वस्तुओं में आस्था नहीं रह गयी है, उस सर्वज्ञ को मिथ्या अविद्या अपने अङ्क में नहीं ले सकती– चंगुल में नहीं फँसा सकती। श्रीराम ! अत्यन्त विरक्त, अपने पारमार्थिक स्वरूप में स्थित और वासस्थान में सब प्रकार की अहंता–ममता से रहित हो तथा न्यायप्राप्त कार्य में तत्पर रहते हुए भी रागरहित हो तुम आकाश के समान निर्लिप्त हो जाओ; क्योंकि कम में लगे रहने पर भी जिस ज्ञानी महापुरुष की उसमें न तो इच्छा (राग) है और न अनिच्छा (द्वेष) ही है, उसकी बुद्धि जलसे कमलदल की भाँति कभी लिप्त नहीं होती। तुम्हारी इन्द्रियाँ और मन गौणी वृत्ति से दर्शन और स्पर्श आदि कार्य करें या न करें, तुम सर्वथा इच्छारहित हो अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रहो। यह संसार–सागर वासनाओं के जल से भरा हुआ है। जो शुद्ध बुद्धिरूप नौका पर आरूढ़ है, वे ही इसके पार जा सके हैं,

दूसरे लोग तो डूब ही गये हैं। जो नित्य तृप्त, शुद्ध एवं तीक्ष्ण बुद्धि वाले जीवन्मुक्त महात्मा हैं, उन्हीं के आचारों का अनुसरण करना चाहिये, भोग–लम्पट दीन–हीन शठों के आवरणों का नहीं। महात्मा पुरुष सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी खिन्न नहीं होते, देवताओं के उद्यान में भी आसक्त नहीं होते और [illegible]–मर्यादा का कभी त्याग नहीं करते। महात्मा पुरुष इच्छारहित तथा न्यायप्राप्त व्यवहार का अनासक्त भाव [illegible] अनुसरण करने वाले होते हैं। वे देह रूपी रथ का आश्रय ले परमात्मा के स्वरूप में स्थित हो आसक्ति शून्य [illegible] विचरते हैं। परम सुन्दर श्रीराम! तुम भी यथार्थ एवं विस्तृत विवेक को प्राप्त कर चुके हो। अपनी इस पवित्र [illegible] बुद्धि के बल से सदा विज्ञानानन्दघन आत्म स्वरूप में स्थित हो।

श्रीरामजी ने कहा – भगवन् ! आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता और समस्त वेदाङ्गों के पारगत विद्वान हैं। आपके पवित्र उपदेश से मैं आश्वस्त पुरुष के समान अपने स्वरूप में नित्य स्थित हूँ। प्रवचन करते समय आपके मुख से जो उदार भावों से युक्त, सुस्पष्ट, सुन्दर तथा परमात्मा के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले वचन निकलते हैं, उन्हें सुनते–सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती – अधिकाधिक सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है। आपने श्रुति–पुराण आदि शास्त्रों के आधार पर कमलयोनि ब्रह्मा की जो उत्पत्ति कही थी, उसका पुनः स्पष्ट रूप से वर्णन कीजिये।

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा– रघुनन्दन ! इस ब्रह्माण्ड में तथा दूसरे–दूसरे विचित्र ब्रह्माण्ड में भी बहुत–से विभिन्न आचार–व्यवहार वाले सहस्त्रों प्राणी विचरते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य समयों में उत्पन्न होने वाले अनन्त भुवनों में दूसरे–दूसरे बहुत – से प्राणी एक ही समय अधिक संख्या में उत्पन्न होंगे। महाबाहो ! उन ब्रह्माण्डों में उन ब्रह्मा आदि देवताओं की उत्पत्तियाँ विचित्र – सी हुई बतायी गयी हैं। महासर्ग के आरम्भकाल में कभी तो ब्रह्मा कमल से उत्पन्न होते हैं, कभी अण्ड से और कभी आकाश से प्रादुर्भूत होते हैं। विभिन्न सृष्टियों में कोई भूमि केवल मिट्टी के रूप में प्रकट हुई तो कोई पथरीली थी, कोई सुवर्णमयी थी और कोई ताम्रमयी थी। इस ब्रह्माण्ड में भी भिन्न–भिन्न प्रकार के कितने ही आश्चर्य मय जगत् हैं। इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म स्वरूप महाकाश में अनन्त जगत् महासागर की तरङ्गों के समान उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। जैसे समुद्र में लहरें और मरु–मरीचिका में जल की धाराएँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार पर ब्रह्म परमात्मा में अगणित विश्व की शोभा प्रकट होती है। (तात्पर्य यह कि जैसे सूर्य की किरणों में जल की प्रतीति मिथ्या है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परमात्मा में इस जड़ जगत् का वैभव मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है।) जैसे वर्षा आदि ऋतुओं में मच्छरों के समूह उत्पन्न हो–होकर सब ओर भर जाते हैं और फिर नष्ट भी हो जाते हैं, उसी प्रकार ये संसार की सृष्टियाँ उत्पन्न और नष्ट होती रहती हैं, यह नहीं ज्ञात होता कि ये सदा उत्पन्न और नष्ट होने वाली सृष्टि परम्पराएँ में कबसे आरम्भ हुई। ये सृष्टियाँ पूर्व–से–पूर्व काल में थीं और उससे भी पहले विद्यमान थीं। इस प्रकार अनादिकाल से इनकी परम्पराएँ चल रही हैं। जैसे समुद्र में निरन्तर लहरें उठती रहती हैं, उसी तरह परमात्मा में सदा ही ये सृष्टियाँ उत्पन्न एवं विलीन होती रहती हैं। देवता, असुर और

मनुष्य आदि से युक्त ये समस्त प्राणी नदी की तरङ्गों के समान उत्पन्न हो – होकर विलीन होते रहते हैं। जैसे मिट्टी की राशि में घड़े और अंकुर में पत्ते विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार भविष्य में होने वाली अन्य सृष्टि–परम्पराएँ भी परब्रह्म परमात्मा में स्थित हैं।

श्रीराम ! परमात्मा के स्वरूप में जो वस्तुतः विद्यमान नहीं हैं– बिना हुए ही प्रतीत होती हैं, ऐसी इन विलक्षण सृष्टियों में ब्रह्मा की विविध विचित्र उत्पत्तियाँ बीत चुकी हैं। वास्तव में यह संसार मन के संकल्प का विस्तार मात्र है। यही सर्वसम्मत सिद्धान्त है। मैंने केवल समझाने के लिये तुम्हारे समक्ष इस सृष्टि–क्रम का वर्णन किया है।

फिर सत्ययुग, फिर त्रेता, फिर द्वापर और फिर कलियुग– इस प्रकार सारा जगत घूमते हुए चक्र की तरह बारम्बार आता–जाता रहता है। जैसे प्रत्येक प्रातः काल के बाद दिन आता है, उसी प्रकार पुनः मन्वन्तरों के आरम्भ होते हैं। एक के बाद पुनः दूसरे कल्पों की परम्पराएँ चलती हैं और बारम्बार कार्यावस्थाएँ प्राप्त होती रहती हैं। जैसे वृक्ष में विभिन्न ऋतुओं के अनुसार सारे फल–फूल आदि कभी प्रकट रहते हैं और कभी समय पाकर अप्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार परम तत्त्व परमात्मा में यह सारा जगत् कभी अव्यक्त रहता है और कभी व्यक्त हो जाता है। श्रीराम ! यह संसार कभी भी सत् नहीं है; क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्मा में स्वभाव से ही सदा संसार का अत्यन्ताभाव है। महामते ! ज्ञानी की दृष्टि में यह सब कुछ ब्रह्म ही है। इसलिये संसार नहीं है, यह कथन सर्वथा युक्ति युक्त ही है। अज्ञानी की दृष्टि में संसार का कभी विच्छेद नहीं होता, वह सदा बना रहता है। इसलिये यह संसार–माया मिथ्या होती हुई भी मूढ़के लिये नित्य है, यह कथन भी युक्ति संगत ही है। रघुनन्दन ! जगत् बारम्बार उत्पन्न होता रहता है, इसलिये कभी इसका अभाव नहीं है– ऐसा जो कुछ लोगों का कथन है, वह भी उनकी दृष्टि से मिथ्या नहीं है। यह सब दृश्य पुनः पुनः प्रकट होता है। बारम्बार जन्म और मरण होते रहते हैं। सुख–दुःख, करण और कर्म भी बारम्बार हुआ करते हैं। दिशाएँ, आकाश, समुद्र और पर्वत भी बारम्बार उत्पन्न होते हैं। जैसे खिड़की वाले घरों में एक ही सूर्य की प्रभा बारम्बार अनेक रूपों में प्राप्त होती है, वैसे ही यह सृष्टि प्रवाह रूप से पुनः – पुनः चक्र की भाँति चलती रहती है। फिर दैत्य और देवता जन्म लेते हैं, पुनः लोक–लोकान्तरों के क्रम प्रकट होते हैं, फिर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने की चेष्टाएँ चालू होती हैं तथा पुनः इन्द्र और चन्द्रमा का आविर्भाव होता है। अनेकानेक दानव भी बारम्बार जन्म लेते हैं तथा बारम्बार सम्पूर्ण दिशाओं में मनोहर चन्द्रमा, सूर्य, वरुण एवं वायु का संचार होता रहता है। कालरूपी कुम्हार नाना प्रकार के प्राणी रूप प्यालों को बनाने के लिये पुनः बड़े वेग से निरन्तर कल्प नामक चाक को चलाने लगता है।

त्वमेव सर्वम्म मम देव देवा

लेखिक – श्रीमती शारदा सिसौदिया, बाम्बे आगरा रोड, इन्दौर (म.प्र)

(गुरु भक्ति में डूबा हृदय अपने गुरुदेव से ही अपनी जिज्ञासा का समाधान पूछता है ?

आत्मा – परमात्मा से अलग हो ही नहीं सकता, गुरु के बिना उसका अस्तित्व ही नही है :–

गुरु ही सर्वशक्तिमान है। आत्मा परमात्मा से कैसे अलग हो जाए ? कल्पना से परे है।)

तेरा कण कण में वास है; फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?

साँसों की धड़कन तुम्हीं से

जीवन की मुस्कान तुम्हीं से

दु:ख की बेला में धैर्य तुम्हीं से

फिर बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(1)

विचारों का प्रवाह तुम्हीं से

विचारों के केन्द्र बिन्दु आप ही हैं

चिंतन का प्रस्फुटन आप से

विचारों का विश्लेषण तुम्हीं से

विचारों का मंथन तुम्हीं से..........(2)

भावों का झरना तुम्हीं से

भावों की अभिव्यक्ति तुम्हीं से

भाषा का सौन्दर्य बोध तुम्हीं से

शब्दों का निखार तुम्हीं से

बताओ फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(3)

श्वास प्रश्वास का आवागमन तुम्हीं से
सृष्टि की रचना तुम्हीं से
चराचर की गति विधि तुम्हीं से
सृष्टि का विलिन होना
सृष्टि का अंत तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(4)

जीवन की धारा तुम्हीं से
जीवन की रफ्तार तुम्हीं से
राहों की मंजिल तुम्हीं से
गिरतों को सहारा तुम्हीं से
दु:खों में राहत तुम्हीं से
फिर बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(5)

दुनिया के सुख – दु:ख के
मीठे कड़वे अहसास तुम्हीं से
जीवन के सुनहरे मीठे मीठे सपने तुम्हीं से
बताओ फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?......(6)

कर बद्ध प्रार्थना कर रहा है :-
भक्ति की धारा में डूबा मन
अपने गुरु से प्रश्नों का समाधान चाहता है :-

आत्मा के आत्मलिंग
सत्य का सार तुम्हीं से
सत्य की दृढ़ता तुम्हीं से
जीत तुम्हीं से हार तुम्हीं से
समस्याओं का समाधान तुम्हीं से
फिर बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(7)

भव सागर का किनारा तुम्हीं से
लहरों का बलखाना, मचलना, इतराना
मस्ती से कहीं खो जाना तुम्हीं से
लहरों के आलिंगन की मस्ती तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?......(8)

वाद्य यंत्रों की थाप तुम्हीं से
राग रागनियों का आनंद रस तुम्हीं से
संगीत की स्वर लहरियों की
मिठास तुम्हीं से, पायल की मधुर झंकार तुम्हीं से
मधुर आवाज की सुरीली तान तुम्हीं से
जीवन का अस्तित्व ही तुम्हीं से
फिर बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?.........(9)

सागर की गहराई तुम्हीं से
नदियों का उद्‌गम तुम्हीं से

कल कल करती लहरों की मस्ती तुम्हीं से
नदियों और सागर का मिलन तुम्हीं से
बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?......(10)

रात्री के अंधकार को चिरती
झिलमिल सितारों की रोशनी तुम्हीं से
चंदा की आँख मिचौनी की झलक तुम्हीं से
चंदा की शीतल रश्मि की
भावभीनी हल चल तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?........(11)

तुमने ही किया अलंकारों से भाषा का श्रृंगार
तुमसे ही चली भावों की मचलती बयार
इठलाती बलखाती विचारों की अनुभूति
उससे मिला भाषा को निखार
बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?.......(12)

तुम सूरज की तपन
चन्द्र की शीतल रश्मि
संध्या का शांत निश्छल गंभीर पवन
स्वाति की अमृत तुल्य मीठी बूँद
तुम्हीं तो हो फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(13)

ग्रीष्म की तपन तुम्हीं से
वर्षा की रिमझिम झंकार तुम्हीं से
जाड़ों की सिहरन तुम्हीं से
खेतों की लहलहाती फसलों में
मस्ती का आनंद तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?........(14)

चातक का स्वातिनक्षत्र का इंतजार तुम्हीं से
चकोर का चंद्रमा से अटूट प्यार तुम्हीं से
पक्षियों का कलरव तुम्हीं से
पक्षियों की ऊँची उड़ान तुम्हीं से
पक्षियों की सामूहिक मस्ती तुम्हीं से
कोयल की कुहुकुह की मीठी आवाज तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?..........(15)

बालपन की अंगड़ाई तुम्हीं से
यौवन का उन्माद तुम्हीं से
प्रौढ़ावस्था का गुमान तुम्हीं से
वृद्धावस्था का सहारा तुम्हीं से
जीवन का आदि और अंत तुम्हीं से
बताओ कैसे अलग हो जाऊँ ?....(16)

तुम शाँति पुंज हो
जीवन का हर पल तुम्हीं से

जीवन की साँसें तुम्हीं से
अशांत जीवन में , शाँति की किरण तुम्हीं से
शाँति का आत्मरस तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?........(17)

ककलियों की चटख तुम्हीं से
फूलों की महक तुम्हीं से
भ्रमर का गुंजन तुम्हीं से
गुलशन का श्रृंगार तुम्हीं से
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?......(18)

अल सुबह मंदिरों की घंटियां–
निनाद तुम्हीं से
शंख की मीठी ध्वनि तुम्हीं से
सत्य का सार तुम्हीं से
सत्य की गहराई तुम्हीं से
बताओ फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?........(19)

माँ का मातृत्व तुम्हीं से
पुरुष का पौरुषत्व तुम्हीं से
नारी का नारीत्व तुम्हीं से
नारी की लज्जा तुम्हीं से
पतिव्रता का सत तुम्हीं से
बताओ फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?....(20)

वीरों का साहस तुम्हीं से
सत्य के लिए समर्पण का भाव तुम्हीं से
बलिदान का हौंसला तुम्हीं से
जित ओर देखूँ तुम्हीं तुम हो
जीवों का अस्तित्व तुम्हीं से
बताओं कैसे अलग हो जाऊँ ?.........(21)

बेचैनी की तंद्रा में
प्यार भरी थपकी तुम्हीं से
कठिनाईयों में साहस तुम्हीं से
हताशा में धैर्य तुम्हीं से
बताओ फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?.....(22)

जीव की आत्मा में ईश की
अनुभूति हो तुम
फिर परमात्मा से
आत्मा कैसे अलग हो जाए ?........(23)

जीवन संघर्ष में धैर्य का कवच तुम्हीं से
हमारा अस्तित्व तुम्हीं से
भीषण दुखों का अर्तनाथ तुम्हीं से
चिर शाँति का सुखद आभास तुम्हीं से
असंभव को संभव बनाते तुम्हीं

कठिन को सरल, सरल को जीत में परिणित करते
जीवन जीवन का मिलन तुम्हीं से
जीवन का वियोग तुम्हीं से
जीवन का आदि और अंत तुम्हीं से
सर्व भूतात्मा ही एकात्मा है
जीवन का सार ही उसमें छुपा है
यही योग का निचोड़ है, सत्य का सार है
फिर कैसे अलग हो जाऊँ ?...............(24)

●●●

योग-आसन

वातायनासन

विधि

इस आसन के करने की विधि वृक्षासन से बिल्कुल मिलती जुलती ही है। केवल इतना अन्तर है कि अपना दाहिना पैर जो मोड़ कर बायें पैर की जंघा पर जमा कर रखा हुआ है, उसके घुटने को नीचे को बढ़ा कर बायें पैर के ग्रन्थी स्थान (गुल्फ) टकनों पर जमा कर हाथ जोड़ कर खड़े रहें। बायाँ पैर घुटने में से थोड़ा झुक जायेगा। इस आसन को वातायन आसन कहते हैं।

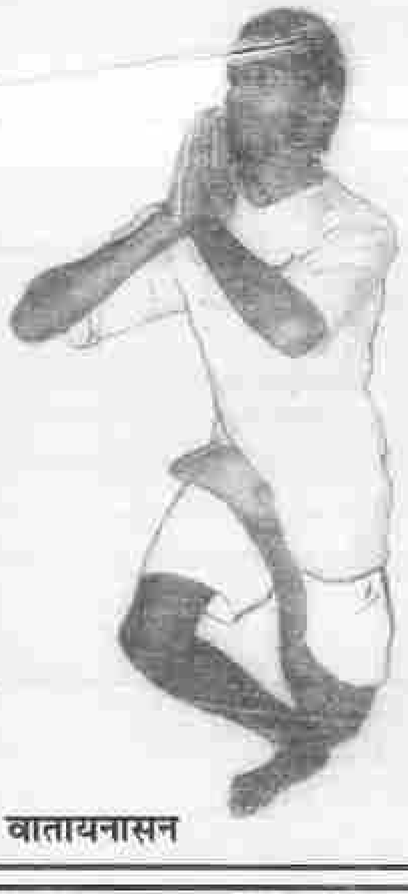

वातायनासन

समय – साधारण वृक्षासन की ही तरह 1 मिनट से आरम्भ करके 2 या 3 मिनट तक पैरों को बदल-बदल कर, कर लेना चाहिए।

लाभ – आरोग्यता बढ़ती है। वायु निस्तरण होकर कोष्ठबद्धता में लाभदायक है। वीराना भाव पुष्ट होते हैं।

●●●

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

पांचवे स्कन्ध के छठे अध्याय में भगवान ऋषभ देव ने योगियों को देहत्याग की विधि सिखाने के लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे अपने अन्त:करण में अभेद रूप से स्थित परमात्मा को अभिन्न रूप से देखते हुये वासनाओं की अनुवृत्ति से छूटकर लिङ्ग देह के अभिमान से भी मुक्त होकर योगमाया की अभिमानाभास के आश्रय ही इस पृथ्वी तल पर विचरते रहे। देव योग से वन में लगे आग की लपटों में घिरा उनका स्थूल शरीर भस्म हो गया –

योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्या

त्यानम सं व्यवहित मनर्थान्तर भावे नान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ।।6।।

सातवें अध्याय में भरत–चरित्र वर्णित है। भगवान ऋषभ के ये बड़े पुत्र थे। कहा गया है कि भगवान् देव के मार्ग पर कोई दूसरा योगी मन से भी कैसे चल सकता है। क्योंकि योगी लोग जिन योग सिद्धियों के लिये लालयित होकर निरन्तर प्रयत्नरत रहते हैं। उन सर्व सिद्धियों को इन्होंने अपने आप प्राप्त होने पर भी असत समझ कर त्याग दिया –

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छे–

न्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी।

यो योगमाया: स्पृहयत्युदस्ता

ह्यसत्तया येन कृत प्रयत्ना: ।।15।। स्क5, अ.6

महाराज भरत बहुज्ञ थे। बहुत वर्षों तक राज्य करने पर उन्हें अपने राज्य भोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर राज्य को पुत्रों में बाँट कर राज महल त्याग पुलहाश्रम (हरिहर क्षेत्र) चले आये। वहाँ चक्रनदी (गण्डकी) ऋषियों के आश्रम को पवित्र करती रहती है। राजा भरत एकान्त वन में भगवान की आराधना में लग गये। उनके अन्त:करण शुद्ध हो गये और परमानन्द की अनुभूति होने लगी। पुष्प, फल, तुलसी दल आदि द्वारा भगवान की पूजा में मगन रहने लगे। उन्हें अब प्रेमानुभूति में अपने प्रियतम प्रभु के अरुण चरणों का ध्यान रूप भक्तियोग का आविर्भाव हुआ जिसके आनन्द में उनकी बुद्धि डूब गयी जिससे बाह्य उपासना स्वयं छूट गया।

आठवें अध्याय में भरत जी का मृग के मोह में फंस कर मृग–योनि में जन्म लेने की कथा कही गयी है। यह कथा आध्यात्म जगत में प्रवेश पाये हुये सिद्धयोग के साधकों के लिये सचेतक है। कथा इस प्रकार है कि पूर्ण मनोयोग से गण्डकी के तीर पर ध्यानस्थ भरत ने व्याघ्र गर्जना सुनी। उनकी एकाग्रता भंग हुआ। उन्होंने देखा कि एक मृगी व्याघ्र गर्जना से भयभीत ऊँचे छलांग लगाती नदी पार जंगल में छिप गयी। परन्तु वह गर्भ वती थी उसका सद्य: जात मृग सावक जल में गिरा छटपटा रहा था। कारुणिक भरत ने उसे बचाया और अपने आश्रम पर उसे पूर्ण सुरक्षा में रक्खा। बड़ा होकर उस मृग सावक के जीव चरित्रों में धीरे–धीरे मन रमता गया। जो राजा सम्पूर्ण राज्य भोग त्याग कर वन में

अच्छी योग साधना में रह थे। वे मृग के व्यामोह में फँसकर तपस्वी भरत जी योगानुष्ठान से च्युत हो गये। मृग छौनों के पालन – पोषण और लाड़–प्यार में ही लगे रहें। आत्म स्वरूप साधना को भूल गये। मृत्यु काल आने पर उसी मृग में आसक्ति होने से उनको मृग योनि में जन्म मिला परन्तु पूर्वजन्म की भगवद् आराधना के कारण उन्हें मृगयोनि प्राप्त होने का कारण याद रहा। मृग योनि में उन्हें सभी आसक्तियों से भयथ लगने लगा था। काल की प्रतीक्षा करते करते प्रारब्ध क्षय होने पर मृग शरीर छोड़ दिया।

मृग शरीर का परित्याग करने पर उन्हें ब्राह्मण शरीर प्राप्त हुआ। पहले जन्मों की व्यथा–कथा की स्मृति रहने के कारण अब वे हर समय भगवान के युगल चरणों का ही ध्यान करते रहते थे। बाह्य दृष्टि में वे पागल, मूर्ख, अन्धे और बहरे के समान व्यवहार करते थे। उनके बड़े भाई कर्मकाण्ड को ही श्रेष्ठ समझते थे। अतः उन्हें भरत जी का प्रभाव ज्ञात नहीं था। वे उन्हे निरा मूर्ख समझते थे। अतः पिता के स्वर्ग सिधारने पर उन लोगों ने इनको पढ़ने– लिखने का आग्रह छोड़ दिया। भरत जी ब्रह्मज्ञान रूप परा विद्या सम्पन्न थे। भरत जी को एक समय डाकुओं के सरदार भद्र काली को बलि देने हेतु पकड़ ले गये।

जब नर–पशु के रुधिर से देवी को तृप्त करने के लिये सरदार ने तलवार उठाया। उसी समय भद्र काली प्रकट हो तलवार छीन कर उन दस्युओं एवं सरदार का बध कर डाला। कहा गया है, कि महापुरुषों के प्रति किया गया अत्याचार रूप अपराध, अपराध करने वालों को ही भोगना पड़ता है।

दसवें अध्याय में जड़भरत और राजा रहुगण सम्वाद वर्णित है।

एक बार राजा रहुगण कहीं पालकी में सवार जा रहे थे। एक कहार अस्वस्थ होने पर उसकी जगह जड़भरत को पालकी उठाने के कार्य में लगा दिया। ढो रहे जड़–भरत के कारण पालकी में बैठे राजा को कष्ट होने लगा। अन्य कहारों ने इसका कारण पालकी छोर है जड़–भरत को बताया। रज–तमयुक्त राजा रहगण बहुत भला–बुरा एव तिरस्कार युक्त वचन अभिमान के वशी भूत बोले। योगेश्वरों की विचित्र कथनी–करनी का उसे ज्ञान न था। राजा की कच्ची बुद्धि देखकर वे सम्पूर्ण प्राणियों के भिन्न एवं आत्मा ब्राह्मण देवता रूप जड़भरत मुस्कराये और बोले।

एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत् प्रियनिकेतं पण्डित मानिनं स भगवान ब्राह्मणो ब्रह्मभूत: सर्व भूत सुहृदात्मा योगेश्वर चर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥ 8॥

स्कं 5, अं 10

जड़भरत ने कहा–राजन ! परमार्थ दृष्टि से कौन स्वामी और कौन सेवक ? व्यवहार शरीर से होता है, दोष उसमें है आत्मा में नहीं। इस प्रकार के यथार्थ तत्व उपदेश देकर भरत मौन हो गये। अब आश्चर्य चकित, क्षुभित, राजा राहुगण ने भरत के चरणों में गिरकर प्रणाम किया और अपने कथन हेतु क्षमा याचना करते हुये कहा– प्रभो ! कृपया बतलाइये, इस प्रकार अपने विज्ञान और शक्ति को छिपाकर मूर्खों की भाँति विचरने वाले आप कौन है ? विषयों से आप सर्वथा अनासक्त हैं। मुझे आपकी कोई थाह नहीं मिल रही है। साधो ! आपके योग युक्त वाक्यों की समझ मेरी बुद्धि में नहीं आरही है।

तद् ब्रह्मसङ्गो जडवन्निगूढ–

विज्ञानवीर्यो विचरस्यपार :।

वचांसि योग ग्रथितानि साधो

न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ।।18।। स्कं.5, अं.10

राजा रहूगण ने कहा– दीनबन्धो ! मेरे द्वारा आप जैसे परम साधु की अवज्ञा हुई है। अतः अब आप मुझ पर प्रसन्न हो तथा साधु–अवज्ञा अपराध से मैं मुक्त हो सकूँ।

इग्यारहवें अध्याय में विनीत भाव से राजा रहूगण ने भरत जी की प्रार्थना और उनके द्वारा दिया गया आत्म ज्ञान प्राप्त किया है। सारांश में भरत जी ने कहा– राजन ! जब तक मनुष्य ज्ञानोदय के द्वारा इस माया का तिरस्कार कर, सबकी आसक्ति छोड़कर तथा काम क्रोधादि छः शुत्रओं को जीतकर आत्मतत्व को नहीं जान लेता तब तक वह इस लोक में व्यर्थ ही भटकता रहता है क्योंकि यह चित्त उसके शोक, मोह, रोग, राग, लोभ और वैर आदि के संस्कार तथा ममता की वृद्धि करता रहता है। यह मन ही तुम्हारा बलवान शत्रु है। उपेक्षा करने से इसकी शक्ति बढ़ती है। आत्मस्वरूप को आच्छादित कर रक्खा है। इसलिये तुम सावधान होकर श्रीगुरु और हरि के चरणों की उपासना द्वारा मन को मार डालो।

"गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्म मोषम्"

राजा रहूगण ने कहा – प्रभो ! मैं अपने संशयों की निवृत्ति तो पीछे कराऊँगा। पहले आप ने जो अध्यात्मयोगमय उपदेश दिया है, उसीको और सरल करके समझाइये।

"अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्त माख्याहि कौतूहल चेतसो में"

भरत जी ने रहूगण को अपने पूर्व जन्मों की कथा को बताते हुये बोले – राजन ! भगवान श्री कृष्ण की आराधना के प्रभाव से उस मृग योनि में भी मेरी पूर्वजन्म की स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसलिये अब मैं असंग भाव से गुप्त रूप में विचरता रहता हूँ।

सारांश यह कि विरक्त महापुरुषों के सतसंग से प्राप्त ज्ञान द्वारा मनुष्य को इस लोक में ही अपने मोहबन्धन को काट डालना चाहिये। श्री प्रभु की लीलाओं के कथन और श्रवण से भगवान की स्मृति बनी रहने के कारण साधक सुगमता से संसार सागर पार कर भगवान को प्राप्त कर सकता है–

तस्मान्नरोऽसङ्ग सुसङ्गजात–

ज्ञानासिने हैव विवृक्णमोहः।

हरि तदीहाकथन श्रुताभ्यां

लब्धस्मृतिर्यात्यति पारमध्वनः ।।16।। स्कं.5, अं.12

● ● ●

शरीर को भगवान का मन्दिर मानकर इसे स्वस्थ रखें

— दिनेश चन्द शर्मा

मनुष्य जन्म अनन्त विशेषताओं और विभूतियों से भरा पूरा है। किसी को भी यह छूट है कि अपना जितना चाहे उत्कर्ष करे। पर यह सम्भव तभी है, जब कि शरीर और मन पूर्णतया स्वस्थ हो। अपने और दूसरों के अभ्युदय में योगदान वही कर सकता है, जो स्वस्थ व समर्थ रहने की स्थिति बनाये रहता है। अनेक दुखद दुर्भाग्यों और अभिशापों में प्रथम अस्वस्थता को माना गया है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि अस्वस्थता की स्थिति उत्पन्न न होने पाए। प्रतिदिन जीवन तत्व साधन और योगाभ्यास द्वारा तन मन को स्वस्थ रखें।

शरीर को भगवान का मन्दिर समझकर आत्म–संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करनी चाहिए। शरीर रूपी मन्दिर को मनमानी बुरी आदतों के कारण रोगी बनाना प्रकृति की दृष्टि से अपराध है। जिसके फलस्वरूप पीड़ा, बेचैनी, अल्पायु, आर्थिक हानि, तिरस्कार जैसे दण्ड भोगने पड़ते हैं।

व्यक्ति अपने इन्द्रिय असंयम द्वारा जीवनी शक्ति को बुरी तरह नष्ट कर देता है। आहार–विहार के असंयम से शरीर के पाचन तन्त्र, रक्त संचार, मस्तिष्क, स्नायु संस्थान आदि पर कुप्रभाव पड़ता है। शारीरिक आरोग्य के मुख्य आधार आत्म संयम और नियमितता हैं। इनकी उपेक्षा करके औषधियों के सहारे आरोग्य लाभ का प्रयास मृग मरीचिका के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर औषधियों का सहारा लाठी की तरह लिया तो जा सकता है किन्तु चलना तो पैरों से ही पड़ता है।

शारीरिक आरोग्य व सशक्तता जिस जीवनी शक्ति पर आधारित है उसे बनाए रखना जरूरी है। शरीर को स्वच्छ, स्वस्थ और सक्षम बनाना पुण्य कर्तव्य है। युक्त आहार विहार पर ध्यान रखें। स्वाद और अति आहार की दुष्प्रवृत्तियों पर अधिकार पाने का प्रयास करना चाहिए। मौन एवं ब्रह्मचर्य साधना द्वारा जीवनी शक्ति को क्षीण न होने दें। उसे अन्तर्मुखी बनाने का निरन्तर अभ्यास करें। दिन चर्या में श्रमशीलता को भी उचित स्थान मिले। जीवन के महत्वपूर्ण क्रमों में नियमितता अपना कर विश्रृंखलता को न आने दिया जाये। आहार, श्रम और विश्राम का सन्तुलन बनाकर व्यक्ति आरोग्य एवं दीर्घ जीवन पा सकता है। आलस्य रहित श्रम युक्त व्यवस्थित दिनचर्या का निर्धारण कठिन नहीं है। स्वाद को नहीं अपितु स्वास्थ्य को लक्ष्य करके उपयुक्त आहार– भोजन की व्यवस्था बनायें। संयम और सन्तुलन की वृत्ति को अपनाकर इस सुर दुर्लभ देह को पाकर उन्नति की ओर अग्रसर रहें ताकि नर्क जैसी हीन और यातना ग्रस्त स्थिति न आने पायें।

आहार–विहार का ध्यान रखने से स्वास्थ्य रक्षा की समस्या हल हो सकती है। स्वास्थ्य के लिए आहार का अनुशासन प्रमुख है। विहार के अन्तर्गत नित्य कर्म, शौच, स्नान, शयन, परिश्रम, सन्तोष आदि के परिपालन पर ध्यान रखना चाहिए।

आस्तिकता और कर्तव्य पारायणता की सद्वृत्ति का प्रभाव पहले अपने समीपवर्ती स्वजन पर पड़ता है। हमारा सबसे निकटवर्ती सम्बन्धी हमारा शरीर है। उसे स्वस्थ और सुरक्षित रखना आवश्यक है। हमारा सदा सहायक सेवक शरीर है। वह चौबिसों घण्टे सोते जागते हमारे लिए काम करता रहता है। सुविधा–साधनों के उपार्जन में उसी का पुरुषार्थ काम देता है। इसकी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान वृद्धि का दायित्व उठाती हैं।

शरीर रूपी वफादार सेवक को समर्थ, निरोग और दीर्घजीवी बनाए रखना प्रत्येक विचारशील का कर्तव्य है। रहन–सहन, आहार–विहार पर ध्यान न देने के फलस्वरूप शरीर का अपार हानि उठानी पड़ती है और रोता कलपता, दुर्बलता और रूग्णता से ग्रसित होकर व्यक्ति असमय में ही दम तोड़ देता है। शरीर को नश्वर कहकर उसकी उपेक्षा करना अथवा शरीर को ही सजाने संवारने में सारी शक्ति खर्च कर देना दोनों ही ढंग अकल्याणकारी हैं। हमें सन्तुलन का मार्ग अपनाना चाहिए।

स्वस्थ–समर्थ रहना कठिन नहीं है। प्रकृति के संकेतों का अनुसरण करने से यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। प्रकृति के सभी जीवधारी यही करते हैं और दुर्घटना जैसी आकस्मिक परिस्थितियों को छोड़कर साधारणतया निरोग रहते हैं और समयानुसार अपनी मौत मरते हैं। प्रकृति के संदेश और संकेतों को जब सृष्टि के सभी जीवधारी समझ लेते हैं तो कोई कारण नहीं कि मनुष्य जैसा बुद्धिजीवी उन्हें न समझ सके। प्रकृति के स्वास्थ्य रक्षा के नियम व्यवहार में सरल हैं और सहज ही समझे व निबाहे जा सकते हैं। उचित और अनुचित का निर्णय करने वाले यंत्र इसी शरीर में लगे हैं; जो तत्काल बता देते हैं कि क्या करना चाहिए। दिल की आवाज को सुनों। मर्यादाओं का पालन और वर्जनाओं का अनुशासन मानने से उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

मनुष्य की उच्छृंखल आदत ही उसे बीमार बनाती है। जीभ का चटोरापन अतिशय मात्रा में अखाद्य खाने के लिए प्रेरित करता है। जिसके फलस्वरूप अपच आदि की समस्या बनती है। बिना पचा सड़ता है और सड़न रक्त प्रवाह में मिल जाने पर जहाँ भी अवसर मिलता है, रोग का लक्षण उभर जाता है। कामुकता जीवनी शक्ति का क्षरण करती है और मस्तिष्क की तीक्ष्णता का हरण कर लेती है।

अतएव व्यक्ति को सम्यक आहार–विहार और नियमित योगाभ्यास करते हुए शरीर को स्वस्थ, निरोग रखकर आध्यात्मिकता की ओर निरन्तर अग्रसर रहना कल्याणकारी है।

● ● ●

स्वरूप का महत्व

मनुष्य की आकृति (appearence) को कई नामों से जाना जाता है। इसे शक्ल, फोटो व स्वरूप भी कहते हैं। दार्शनिक शब्दों में हम इसे स्वरूप कहते हैं। स्वरूप व्यक्ति का एक दूसरे से भिन्न होता है हमशक्ल आदमी बहुत कम पाये जाते हैं। एक ही नाम के व्यक्ति तो हजारों मिल जाते हैं। मनुष्य की आकृति में ही स्वभाव, चरित्र, गुण तथा व्यक्तित्व छिपा होता है। सामुद्रिक लक्षण के विशेषज्ञ मनुष्य की आकृति से ही व्यक्तित्व को समझ जाया करते हैं।

योग मार्ग में मनुष्य के तीन शरीर क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म व कारण के भेद से माने गये हैं। सूक्ष्म शरीर की आकृति भी स्थूल की तरह ही होती है। कारण शरीर को जन्म का कारण होने से कारण शरीर कहते हैं यह शरीर का बीज कहा जा सकता है। कारण शरीर में विद्यमान संस्कार ही जन्म दाता होते हैं। मनुष्य का शरीर छूट जाने के बाद भौतिक शरीर तो पञ्च तत्व में विलीन हो जाता है किन्तु सूक्ष्म शरीर तो रहता ही है जब तक जीव को दूसरा शरीर नही मिलता तब तक सूक्ष्म शरीर की आकृति पूर्ववत रहती है। जो योगी कैवल्य पद भागी हो जाते हैं। वे कर्म बन्धन से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उनका सूक्ष्म शरीर प्रकृति में सदा विद्यमान रहता है। इस सन्दर्भ में पतञ्जलि जी महाराज ने एक सूत्र दिया है जिसका अर्थ है कि कृतार्थ योगी के लिये पूर्व शरीर का कोई अर्थ नहीं रह जाता किन्तु जो अन्य साधारण लोग हैं उनके लिये उस शरीर का महत्व बना रहता है। निम्न सूत्र देखें। "**कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्य साधारणत्वात्**" प्रकृति के गर्भ में वह शरीर जो मन, बुद्धयात्मक है बना रहता है। यही कारण है योगी लोग भूतपूर्व आत्माओं से सम्पर्क करके ज्ञान प्राप्त किया करते हैं। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज तो सदा ही पूर्व में हुये आत्माओं से सम्पर्क करके ज्ञान प्राप्त किया करते थे। उन्होंने गुरुनानक देव जी से शबरी से, ध्रुव से, तथा बहुत से अन्य आत्माओं से सम्पर्क करके ज्ञान अर्जन किया करते थे।

स्वामी योगानन्द कृत योगी कथामृत में उनके गुरुदेव युक्तेश्वर गिरी जी का शरीर छोड़ने के बाद प्रकट होकर हिरण्य लोक के आत्माओं का वर्णन मिलता है। उनके अनुसार पृथ्वी लोक से गये हुये जीवों की आकृति पूर्व वत ही रहती है इसी कारण से वहाँ आत्मायें एक दूसरे को पहचान लिया करते हैं। सूक्ष्म शरीर का एक सुन्दर उदाहरण श्री प्रभु रामलाल जी के चरणों में सुनने व पढ़ने का मिलता है। अमृतसर शहर में एक महिला प्रतिदिन पाँच बजे शाम श्री प्रभुजी का दर्शन करके चली जाया करती थी वह वहाँ की शिष्या नही थीं। एक दिन मकान की सीढ़ियों में गिरने से सिर की चोट से उसका देहान्त हो गया। क्योंकि उसी समय वह प्रतिदिन श्री प्रभु जी

के दर्शन को आया करती थी। उस समय सत्सगियों में चर्चा चली, आज वह देवी नहीं आई है। श्री प्रभु जी ने कहा – उसका देहावसान हो गया है और उसका सूक्ष्म शरीर सामने हाथ जोड़े स्थित है। श्री प्रभु जी ने उसकी नियमानुवर्तिता को देखते हुये उत्तम लोक प्रदान कर दिया।

योग दर्शन में समाधि प्राप्ति का एक उपाय ' वीत राग विषयं वा चित्रम् ' बताया है। इस का अर्थ है कि वीत रागी महापुरुषों के स्वरूप को एकाग्रता का विषय बनाया जाये तो इससे भी समाधि की प्राप्ति हो जाती है। वीत रागी पुरुष चाहे शरीर से हो या नहीं किन्तु उनका सूक्ष्म शरीर तो प्रकृति में लय रहता है। उनके सूक्ष्म चिन्मय शरीर का ध्यान करने से भी मन एकाग्र होकर समाधिस्थ हो जाया करता है। इसलिये ही योगी लोक सिद्ध पुरुषों के ध्यान से शक्ति प्राप्त कर सिद्धत्व को पा जाते हैं।

गीता के चौदहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में भी अपने को ब्रह्म कहा है। ' ब्रह्म की प्रतिष्ठा मुझ में है। ' अर्थात् वह व्यापक ब्रह्म सत्ता भगवान कृष्ण के स्वरूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार से निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि स्वरूप का बहुत महत्व है। ब्रह्म को भी तेज को व्यक्त करने के लिये आधार की आवश्यकता पड़ती है। अत: मूर्ति व स्वरूप का ध्यान वैज्ञानिक तथा तर्क संगत कहा जा सकता है।

● ● ●

शोक संवेदना

बड़े दु:ख के साथ सूचित कर रहे हैं कि सहारनपुर निवासी प्रिय अवनीश कुमार भटनागर का 01 मई को देहावसान हो गया है वे 45-46 वर्ष के थे व श्री गुरुदेव के प्रिय बच्चों में से थे। पत्रिकाओं में नियमित लेख आया करते थे। दिवंगत आत्मा को श्री प्रभु जी शान्ति दें। इस दु:ख की बेला पर परिवार के दु:खी जनों को हम अपनी हार्दिक दु:ख संवेदना भेजते हैं। सिद्धयोग परिवार इस समाचार से अत्यन्त दु:ख महसूस कर रहा है।

शोकाकुल
सिद्धयोग परिवार
व सम्पादक

भजन - कव्वाली

– मोती राम गर्ग, अलूपुर

टेक – मुझे तो गुरुदेव प्यारे हैं, नजर कोई और न आवे।

जगत के नाते झूठे हैं, झूठा ये संसार सारा है,
नहीं किसी से सम्बन्ध प्रभुजी, तू ही हमें प्यारा है,
तेरे चरणों की रज मिल जावे, तो जन्म सफल हो जावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

करता हूँ जब याद तुमको, ह्रदय भर-भर के आता है,
उठती है झाग समुन्द्र की, दिल मचल-मचल जाता है,
गुरु शिष्य का यह नाता, कभी मिट ना पावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

सूरज और जमीं के बीच का, जो फासला खाली,
शक्ति तेरी है घूम रही, करता सब की रखवाली,
देता रहता है जीवन दान, नजर किसी को ना आवे।
मुझे तो गुरुदेव...

जगत के मोह में फंसकर, जीवन व्यर्थ गंवाया है,
नहीं कुछ पाया नहीं सीखा, नहीं कुछ समझ में आया है,
तेरी माया के चक्कर में प्रभुजी कहीं जीवन बीत ना जावे।
मुझे तो गुरुदेव ....

स त्यागः सात्विको

– पं. कृष्ण कुमार पाण्डेय

धर्म युद्ध के मैदान में अर्जुन अपने ईष्ट, मित्र एवं सारथी योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के उपदेशों को गम्भीरता से श्रवण करता रहा। मन के संसय धीरे –धीरे समाप्त हो गये थे। किन्तु अर्जुन भगवान का सामान्य शिष्य नहीं था। पूर्ण तपस्वी विरक्ती ब्रह्मचारी शिष्य अर्जुन समाज के सामान्य जन का प्रतिनिधित्व करने वाला दिख रहा था। गीता का अध्ययन करने वाला दिख रहा था। गीता का अध्ययन करने वाला साधक निश्चय अपने समस्त समस्याओं का समाधान यहाँ पा जाता है। यदि वह पवित्र अन्त: करण से गीता पाठ करता है तो समस्याओं के बादल स्वाभाविक रूप से नष्ट हो जाते हैं। अब यह साधक की वृत्ति पर आधारित है कि वह अपने समाधान के लिए सात्विक, राजसी एवं तामसी वृत्तियों से किस वृत्ति वाला होकर समाधान चाहता है। किन्तु गीता शास्त्र समाधान की ओर प्रवृत करती है। अर्जुन ने सन्यास और त्याग के तात्विक अर्थ को जानने की इच्छा से प्रश्न किया कि आप इन दोनों कर्मों को पृथक–पृथक करके बतावें की इसमें क्या अन्तर है। किसको तात्त्विक दृष्टि से ग्रहण किया जाय जिससे परमार्थ पद को प्राप्त किया जा सके। भगवान शिष्य के अन्त:करण के भावों को समझ गये कि यह अत्यन्त रहस्य युक्त सात्त्विक वृत्ति वाला होकर जिज्ञासा किया है। अर्जुन की जिज्ञासा को शान्त करते हुए भगवान ने अनेक विद्वानों द्वारा कर्म के विभिन्न स्वरूपों को बताते हुए उनको त्याग की बात कही है। सन्यास और त्याग दोनों को अलग–अलग करते हुए सर्वप्रथम त्याग के बारे में उपदेशित करते हुए कहा कि यह त्याग, सात्त्विक राजस और तामस तीन प्रकार का है। तीन तरह के व्यक्ति इस संसार के होते हैं। बुद्धिमान अर्थात सात्त्विक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति इस संसार में रहते हुए यज्ञ दान तप तीनों को करता है। क्योंकि तीनों के अलग–अलग गुण और धर्म है। इसको करने में साधक को आसक्ति बुद्धि वाला नहीं होना चाहिए आसक्ति बुद्धि का तात्पर्य तीनों कर्मों को करने में फलकांक्षा नहीं होना चाहिए। साधक का अपना यह स्वाभाविक कर्म मानकर कर्तव्य भाव से कर्म करते रहना चाहिए। क्योंकि भगवान ने स्वयं कहा है कि – " **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदचन** " । वस्तुत: इस संसार में जो भी कर्म है सब क्लेश युक्त है क्योंकि किसी कर्म को करने के बाद ऐसा नहीं है कि अब फिर से उस कर्म को नही करना पड़ेगा। इसको सामान्य रूप से समझने के लिये कर्म को जानना उपयुक्त है। जैसे स्त्री, पुत्र धन तथा अन्य प्रिय वस्तु को प्राप्त करना अथवा रोग आदि से निवृत्ति के लिए किया गया कर्म। इन सब वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रभावित करता है। इसके लिए व्यक्ति यज्ञ, दान और तप करता है। जिससे ये वस्तुएं सुलभ हो जाती हैं। संसार में जन्म लेने वाला

कलिधर्मी प्राणी भोग वृत्ति वाला और प्रयोग धर्मी है। वह समस्त वस्तुओं का प्रयोग भी कसौटी पर खरा उतर कर उसका उपभोग करता है। संसार में जितनी भी भौतिक वस्तुएँ हैं। उसका भोक्ता मनुष्य ही है। भगवान ने कहा है –

कर्ममित्येव यतकर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।

संङ्क्त्यक्त्वां फलं चैव सत्याआः सत्त्विको मति ।।

अर्थात हे अर्जुन शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है इसी भाव से आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है वही सात्त्विक त्याग माना गया है। वास्तव में कलिधर्मी व्यक्ति द्वारा किसी भी कर्म की पूरी तरह से फल की आकांक्षा को छोड़कर कर पाना सहज नही है। किन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है सभी मनुष्यों की प्रवृत्ति ऐसी ही होगी। उसमें भी सात्विक प्रवृति के व्यक्ति जो निरासक्त भाव से सब कर्म को अपना नहीं बल्कि ईश्वर द्वारा निर्धारित मानकर कर्तव्य बुद्धि से ईश्वरार्पण होकर कार्य करते रहते हैं।

कर्म रहस्य को बताते हुऐ भगवान ने कहा –

पञ्चैतानि महावाहो करणानि निवोधमे ।

साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोन्त्क्तानि सिद्वये सर्व क्रर्मणम् ।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।

विविधाश्च पृथक्येष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।

अर्थात् हे अर्जुन शास्त्र में सम्पूर्ण कर्मो की सिद्धि के कर्मो का अन्त करने हेतु उपाय बताये गये हैं। कर्मो की सिद्धी में अधिष्ठान अर्थात् जिसके आश्रम में कर्म किये जायें तथा कर्त्ता विभिन्न प्रकार के करण अर्थात् जीव इन्द्रियों एवं साधनों के द्वारा कर्म किये जाते हैं। एवं अलग–अलग कर्मो की चेष्टा तथा दैव अर्थात् पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मो के संस्कार आदि। जो साधक किसी भी कर्म को करते हुए अपने अन्तःकरण में कर्त्तापन के भाव को मापकर संसार के किसी भी भौतिक पदार्थो में तथा किसी भी प्रकार के कर्मो में अपनी बुद्धि को न लगाते हुए संसार में जीवन धारण करता है। सही आर्थों में वही पाप से किसी भी प्रकार बँधता नही है। जैसे कोई व्यक्ति अग्नि, वायु और जल के द्वारा प्रारब्ध वश किसी प्राणी की हिंसा होती देखता है तो वह वास्तव में हिंसा नहीं है। वास्तव में आसक्ति, स्वार्थ और अहंकार के न होने से किसी प्राणी की हिंसा हो ही नहींसकती है।

कर्म के रहस्य को बताते हुए योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को बताया कि –

ज्ञाय ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्म चेदटना ।

करणं कर्म कर्तेति त्रिविधाः कर्म सङ्ग्रःहः।।

अर्थात् हे अर्जुन ज्ञाता अर्थात् जानने वाला, ज्ञान अर्थात् जिसके द्वारा जाना जाय, ज्ञेय अर्थात् जानने में आने वाली वस्तु में तीन प्रकार के कर्म प्रेरणादायक हैं। तथा कर्त्ता करण

अर्थात् जिन साधनों से कर्म किया जाय तथा क्रिया ये तीन प्रकार के कर्म संग्रह हैं। हम सब के ज्ञान से साधक पृथक-पृथक सब भूतों में उस तत्व को समभाव से देखता है वही ज्ञान ही सात्विक ज्ञान है। इसी प्रकार जो सब प्राणियों में भिन्न – भिन्न भावों से देखता है वह राजस तथा जो अपने ही शरीर को सब कुछ मान कर कर्म करता है। वह तामसी कहलाता है। भगवान ने तीन प्रकार के कर्म बताये –

नियतं संगरहितम राग द्वेषत: कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्साित्त्वकमुच्यते ।।

राजस कर्म के बारे में कहा कि –

यत्तुकामेप्सुना कर्मसाहं कारेण वा पुन: ।
क्रियते वहुलायासं तद्राजसमुदा हृतम: ।।

अर्थात् जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहने वाले पुरुष द्वारा या अहंकार युक्त पुरुषों द्वारा जो कर्म किया जाता है। वह राजस कर्म कहलाता है।

तामस कर्म क्या है –

अनुवन्धं क्षयं हिसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।। (22)

जो कर्म किसी परिणाम, हिंसा, हानि और सामर्थ्य को न विचार कर मात्र अज्ञानता से प्रारम्भ किया जाता है। पूर्वापर का विचार नहीं करता वह राजस कहा जाता है। उसी प्रकार तीन प्रकार की बुद्धि वाले लोगों के बारे में उपदेशित करते हुए कहा कि –

प्रवृत्ति च निवृत्ति च कार्याकार्ये भयाभये ।
वन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिसा पार्थ सात्त्विकी।।

अर्थात् सात्त्विकी बुद्धि वाला व्यक्ति जो प्रवृत्ति मार्ग (गृहस्थाश्रम में रहते हुए फल और आसक्ति को त्याग कर भगवान को सब अर्पण करते हुए लोक कल्याणार्थ) तथा निवृत्ति मार्ग (परमात्मा में ही अपने मन, बुद्धि, चित्त को लगाकर कार्य करना) भय एवं अभय, बन्धन और मोक्ष, कर्तव्य एवं अकर्त्तव्य को यथार्थ जानने वाली बुद्धि सात्त्विकी वाला बताया है। इसके अतिरिक्त जिस बुद्धि के द्वारा व्यक्ति धर्म, अधर्म, कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य को यथार्थ मे नहीं जानता वह राजसी बुद्धि वाला है। तमोगुणी व्यक्ति अधर्म को धर्म मानता इसकी बुद्धि सात्त्विकी एवं राजसी से ठीक विपरीत होती है। इसके बाद धारण करने वाली बुद्धि वाले व्यक्ति की मन: स्थिति को उपदेशित कर कहा कि – हे अर्जुन व्यक्ति अपने मन एवं बुद्धि को ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था के साथ समर्पित होकर ध्यान योग के द्वारा, मन, प्राण तथा अपनी इन्द्रियों की समस्त क्रियाओं को भी भगवदर्पण बुद्धि से तथा निष्काम भाव से मात्र ईश्वर के प्रति अर्पित की जो धारणा बनती है वह सात्त्विकी धृत्ति है। इसके विपरीत समस्त आचरण, कर्म, राजसी एवं

तामसी धृत्ति की होती है।

तीन प्रकार के सुख –

भगवान ने कहा सुख भी तीन प्रकार के हैं –

सुखंत्विदानी त्रिविधं श्रणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासादृमते यत्र दु:खान्तं च। निगच्छति ।।
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतो पमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्म बुद्धि प्रसादजम् ।।

सात्त्विक सुख जो तीनों में प्रथम है। साधक ईश्वर का भजन, पूजन, ध्यान तथा अपने इष्ट के सेवाभ्यास में रमण करता है। इससे दु:ख स्वयं समाप्त हो जाते हैं। यद्यपि कि ईश्वर का चिन्तन, मनन, निदिध्यासन अत्यन्त कठिन तथा विष जैस प्रतीत होता है, लेकिन कालान्तर में यही सुख परमानन्द प्रदान करने वाला होता है। कबीर ने भी कहा है –

दु:ख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै तो दु:ख काहे को होय।।

यद्यपि भोग काल में सुख तो अत्यन्त प्रिय लगते है लेकिन परिणाम में विष के तुल्य है। इन्द्रियों के संयोग से बल, वीर्य, बुद्धि,धन, उत्साह उत्पन्न होते हैं। जो परलोक नाशंक है। यह राजस सुख तथा इसके विपरीत ऐसा सुख जो भोग काल तथा परिणाम में आत्मा को मोहित करता वह तामस सुख है। इसी प्रकार भगवान ने इन तीन गुणों (सात्त्विक, राजस, तामस) से उत्पन्न प्रकृति वाले व्यक्तियों के विभिन्न कर्मो के बारे में उपदेश दिया है। इस सृष्टि में चारों वर्णो के भी अलग–अलग कर्म उनके स्वभाव के कारण बताये हैं। भगवान ने कहा –

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभाश: ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारम व्ययम ।।4।।13

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन चारों वर्णो की रचना गुण और कर्म के आधार पर मेरे द्वारा रचे गये है। फिर भी मैं स्वयं अकर्त्ता ही बना रहा । ब्रह्मण के कर्म को उपदेशित करते हुए कहा –

शमोदमस्तप: शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञान विज्ञान भास्तिक्य ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ।।

अर्थात् अन्त: करण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, तप, शुद्धि, अपराध,क्षमा, मन, इन्द्रियों को विनम्र रखना, वेद शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदि में श्रद्धा रखना। वेद शास्त्र का अध्ययन करना तथा परमात्मा के तत्व का अनुभव करना ये सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

शौर्य तेजो धृत्ति दर्क्ष्यं युद्धे चाप्य पलायनम् ।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।

अर्थात् हे अर्जुन क्षत्रियों के कर्म को सुन क्षत्रियों में शूर वीरता, तेज, धैर्य, चतुरता तथा युद्ध से पलायन न करना, दान देना ये स्वाभाविक कर्म हैं। लम्बी चौड़ी व्याख्यान देने के बाद भगवान ने अर्जुन को युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है ऐसा बताते हुए अर्जुन को उत्साहित कर दिया। पुन: वैश्य एवं शूद्र के कर्म को बताते हुए कहा कि –

कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् ।

परिचयत्मिकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥

अर्थात् खेती, गोपालन, तथा क्रय और विक्रय रूप वैश्य के तथा सब वर्णो की सेवा करना शूद्र के स्वाभाविक कर्म बताये।

भगवान ने समस्त वर्णो को उपदेशित करते हुए कहा कि सब वर्णो के अपने गुण धर्म के अनुसार कर्म करना चाहिए। क्योंकि अपना धर्म ही श्रेष्ठ धर्म है। स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ जीव पाप का भागी नहीं हो सकता है। इस स्वधर्म को व्यक्ति को सहज रूप से स्वीकारते हुए करना चाहिए। यद्यपि कि कर्म अग्नि में धुंए की तरह दोष से युक्त होते हुए भी उसे छोड़ना नही चाहिए। भगवान ने कहा कि –

यत: प्रवृत्ति भूतानां येन सर्व मिदं ततम् ।

स्व कर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव: ॥

अर्थात् हे अर्जुन सभी प्राणियों की उत्पत्ति परमेश्वर से है। इसीलिए जीव अपने वर्ण के अनुसार कर्म करते हुए ही व्यक्ति परमार्थ पद प्राप्त कर सकता है। यद्यपि कलि काल में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ धीरे–धीरे समाज में व्याप्त हो रही हैं। आपसी कटुता, वैमनस्यता, ईर्ष्या, लोभ आदि समस्त प्रवृत्तियाँ जीव में आ रही हैं। जिसका परिणाम भी व्यक्ति भोग रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति परमार्थ लाभ के लिए व्यक्ति आडम्बर रहित कर्म, सत्संग, ईश्वर चिन्तन एवं निदिध्यासन करे। जिससे दुष्प्रवृत्तियाँ समाज से समाप्त हो। अन्यथा दुष्कर परिणाम को भोगने हेतु तैयार रहना होगा सात्तिविकी वृत्ति से ही शान्ति प्राप्ति होगी अन्य कोई उपाय नहीं है।

● ● ●

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है – सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है।

– महर्षि अरविन्द

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2015-17 JUNE 2015

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति। नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम्। आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट (च्युत) हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है। हे धनंजय! जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों का परमात्मा में, अर्पण कर दिया है, जिसने विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है ऐसे वश में किए हुए अन्तःकरण वाले पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

संस्थापक :- योगाचार्येश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ग्राफिक एण्ड प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा